देवताओं की छाया में

नाटककार

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

प्रकाशक

रेनबो बुक कम्पनी

पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक

[illegible] ोहनलाल रोड, लाहौर ।

सुप्तप्राय रंगशाला के नाम !

आमुख

अपने कहानी संग्रह मानसरोवर के प्राक्कथन में कहानी और उसकी कला पर प्रकाश डालते हुए स्व० प्रेमचन्द ने लिखा:—

"हमें यह स्वीकार कर लेने में संकोच न होना चाहिए कि उपन्यासों की भाँति आख्यायिका की कला भी हमने पच्छिम से ली है, कम से कम इसका आज का विस्तृत रूप तो पच्छिम का ही है।"

यदि यही बात मैं एकाकी के सम्बंध में भी कहूँ तो अनुचित न होगा। एकाकी लिखने की जो स्फूर्ति हमें हाल ही में मिली है उसका कारण पश्चिम में एकांकी की उन्नति और साहित्य तथा रगमंच पर उसका छा जाना ही है।

एक अंक का नाटक हिन्दी के लिये, कम से कम हिन्दी रंगमंच के लिये (यदि हिन्दी का कोई अपना रंगमच है!) सर्वथा नयी चीज़ है। यूरोप में जब कई कारणों से रंगमंच अवनति की ओर जाने लगा और रंगशाला के मालिकों ने अनुभव किया कि पुराने नाटकों का युग बीत गया है तो उन्होंने प्राचीन शैली के नाटकों के स्थान पर नयी तर्ज़ के नाटक प्रचलित किए और स्टेज

को लगभग मिट जाने से बचा लिया।

नया नाटक, जिसने इस परिवर्तन काल में जन्म पाया, अपने दूसरे गुणों के अतिरिक्त यह खूबी भी रखता था कि वह पुरानी शैली के नाटकों की अपेक्षा संक्षिप्त था। कहने का तात्पर्य यह कि अगर पुरानी शैली के नाटक चार पांच घंटों में खेले जाते थे तो यह बड़ी सुगमता से डेढ़ दो घंटों में ही समाप्त हो जाता था। इस लिये जब जनता इस छोटे नाटक के लिये तैयार हो गई और उस ने इसे प्रशंसा की निगाहों से देखा तो उसके लिये इस से भी संक्षिप्त अर्थात् बीस तीस मिनट या अधिक से अधिक एक घंटे में समाप्त हो जाने वाले एकाकी के लिये तैयार हो जाना कुछ कठिन न था। और अब वह समय आ गया है कि एकाकी यूरोप के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फैल गया है और नगर तो दूर, देहात की जनता तक इस में दिलचस्पी ले रही है।

भारत के प्राचीन साहित्य में एकांकी

यद्यपि यूरोप में एकाकी को जन्म लिये कठिनाई से अर्ध-शताब्दी भी नहीं गुज़री और इस से पहले वहां के साहित्य में इसका अस्तित्व भी न था, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उससे पहले एकाकी नाम की चीज़ ही संसार में मौजूद न थी। भारत के स्वर्ण युग में, जहां कला के दूसरे अंगों का पूर्ण विकास हुआ था, वहां एकांकी नाटक भी अपनी समस्त व्यापकता और विभिन्नता

के साथ उपस्थित था। रंगमंच पर एकाकी नाटक खेले जाते थे और इनकी अपनी निजी कला भी थी।

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ साहित्यदर्पण में दृश्य काव्य के दो भेद बताए गए हैं। इन में 'भाण' और 'व्यायोग' एकाकी की ही प्रसिद्ध किस्में हैं। इसी ग्रन्थ के पृष्ठ २६१ तथा २६२ पर लिखा है।

भाणः स्याद् धूर्तचरितो नानावस्थान्तरात्मकः।
एकांक एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः॥

और फिर

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः॥
एकांकश्च भवेत्.........

महाकवि भास का ऊरुभंग और नीलकंठ का कल्याण सौगंधिक प्रसिद्ध एकाकी हैं।

इसके अतिरिक्त उपरूपक के १८ भेदों में भी 'गोष्ठी', 'नाट्य-रासक', 'उल्लाप्य', 'काव्य' और 'अंक' आदि एकाकी नाटक के विभिन्न रूप हैं। उस समय चूंकि भारत का रंगमंच दर्शकों को खूब आकर्षित करता था, कालीदास और भास ऐसे नाटककार साहित्य की अभिवृद्धि में रत थे इस लिये बड़े नाटक के साथ साथ एकाकी ने भी काफी उन्नति की और उस समय के रंगमंच की आवश्यकताओं के अनुसार इसकी कला भी विकासशील रही। दुर्भाग्य-

वश अनेक कारणों से जीवन की अन्य धाराओं की भाँति साहित्य में भी हमारी प्रगति रुक गई और हमने प्राचीन से जौ भर भी हटना निषिद्ध समझ लिया। इस लिये काव्य और कथा के साथ हम नाटक मे भी पश्चिम से पिछड़ गए। नहीं तो पुराने एकाकी नाटकों को आवश्यक संशोधन और परिवर्धन के साथ—उनमें सूत्रधार के कथन से नाटक आरम्भ करने और बात बात पर श्लोक कहने, तथा ऐसे ही अन्य दोषों को निकाल कर और उन्हें जीवन के तनिक और समीप लाकर हम यूरोप से बहुत पहले नाटक का पुनरुत्थान कर सकते थे। लेकिन हमारे यहा तो रंगमंच ही मृत-प्राय हो गया, सिनेमा ने बड़े नाटकों को समाप्त कर दिया, फिर एकांकी बेचारे की तो बात ही क्या है? यूरोप ने जिस प्रकार समय के साथ रह कर नाटक को विस्मृति के गर्त्त में गुम होने से बचा लिया, वैसा भारत नहीं कर सका। और यही कारण है कि आज हिन्दी उर्दू दोनों में एकाकी नाटक एक नयी सी चीज़ दिखाई देता है।

प्राचीन और अर्वाचीन नाटक

इस से पहले कि मैं आधुनिक एकाकी के जन्म और उसकी प्रगति के बारे में कुछ कहूं मैं यहा, संस्कृत के प्राचीन नाटकों और आधुनिक नाटकों में जो भेद है, उनका संक्षिप्त में ज़िक्र कर देना चाहता हूँ।

पहला भेद तो यह है कि जटिल नियमों से बद्ध होने के बावजूद

प्राचीन संस्कृत नाटक में निर्देश बिलकुल छोटे अथवा नहीं के बराबर होते थे और आधुनिक नाटक यद्यपि बंधनमुक्त हैं, किन्तु उनमें नाटकीय सकेत अत्यन्त लम्बे और व्यापक होते हैं। दूसरा यह कि 'नान्दी' 'मंगलाचरण' 'प्रस्तावना' 'स्वगत' आदि जो प्राचीन नाटक के आवश्यक अंग थे अर्वाचीन नाटक में देखने को भी नहीं मिलते। तीसरा यह कि उनमें नायक, नयिका और कथानकों का बंधन भी नहीं और न ही वे सूत्रधार और नटी द्वारा आरम्भ किए जाने की अपेक्षा करते हैं। फिर चौथा यह कि प्राचीन की अपेक्षा आधुनिक एकांकी जीवन के अत्यधिक समीप हैं। उनका कथानक कल्पना पर अवलम्बित होने के बावजूद जीवन का उल्लंघन नहीं करते। वास्तव में उनका क्षेत्र जीवन सा ही विस्तृत है।

यूरोप में एकांकी का जन्म

यूरोप में आज एक अंक का नाटक अत्यधिक महत्व प्राप्त कर चुका है। लेकिन, जैसा कि मैंने पहले कहा, चालीस पचास वर्ष पहले वहा इसे कोई जानता भी न था। इंग्लिस्तान में एकांकी का जन्म दिलचस्पी से खाली नहीं। पहले पहल न इसे गम्भीरता से लिया गया और न इसे कोई विशेष महत्व ही दिया गया। रात को देर से खाना खाने के स्वभाव के कारण, जैसा कि उस समय इंग्लिस्तान के लोगों का था, रंगमंच के मालिकों को किसी ऐसी

चीज़ की जरूरत पड़ी, जिससे वे दर्शकों का उस समय तक मनोरंजन कर सकें, जब तक कि देर से खाना खाने वाले रंगशाला में न पहुँच जाएँ। वास्तव में थीएटर हाल में कुछ लोगों के देर से आने के कारण, एक तो नाटक के आरम्भ में विघ्न पड़ जाता था और दूसरे पहले से बैठे हुए दर्शक अप्रसन्न हो जाते थे। इसी समस्या का हल करने के लिये Curtain raiser (पर्दा उठाऊ) का आविष्कार किया गया। यह एक छोटा सा एकाकी होता था जो पर्दा उठने से पहले खेला जाता था। पहले पहल यह घटिया क़िस्म का प्रहसन होता था, जिसका मनोरथ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन का यथार्थ और स्वभाविक चित्रण न होकर दर्शकों का मनोरंजन मात्र होता था। नाटकीय द्वन्द्व (Dramatic conflict) और अन्तिम विन्दु (Climax) भी इसे प्राप्त न थे।

लेकिन १६०३ में लदन के वैस्ट ऐंड थीएटर में एक घटना घटी जिस ने इस नकल को सस्ती, थोथी और घटिया क़िस्म की चीज़ के दर्जे से उठा कर एक दम साहित्य का एक महत्व पूर्ण अंग बना दिया।

इस वर्ष डब्लयू डब्लयू जेकब (w. w. jacob) की एक कहानी बन्दर का पंजा (Monkey's Paw) को एकाकी का रूप देकर पर्दा उठोऊ के स्थान पर खेला गया। किन्तु जब इस का पर्दा गिरा तो लोग इतने प्रभावित हुए कि जिस नाटक को देखने

आए थे, उसे देखे बिना हाल से उठ गए।

एकांकी की प्रगति और उसका महत्व

इस एक ही घटना से एकांकी की सम्भावनाओं और उसके महत्व का पता चल जाता है, किन्तु उस समय रंगमंच के सर्वे-सर्वा घबरा गए और इस भय से कि लम्बे नाटकों की लोकप्रियता को धक्का न पहुँचे उन्होंने इसे रंग-मंच से निर्वासित कर दिया। किन्तु इसके लिये यह अच्छा ही हुआ। व्यवसायिक रंग-मंच से निकल कर यह देश के विस्तृत रंगमच पर आया। नगर नगर रंगशालाएँ बनीं और जीवन की विभिन्न समस्याओं पर एकाकी नाटक खेले जाने लगे। बड़े भारी रंग-मंच की, या पर्दों की, या फ़र्नीचर की, या बहुमूल्य पोशाकों या दूसरे कीमती सामान की आवश्यकता न थी, किसी सम्राट, अमीर, नव्वाब, या किसी दूसरे ही ऐसे नायक के बिना भी काम चल सकता था और वे देहाती जो अधिक शिक्षित न थे, अपनी विविध समस्याओं के हल अपने सामने पाने लगे, अपनी कुरीतियों के परिणाम अपनी आँखों के सामने एकांकी की छोटी सी स्टेज देखने लगे। इस तरह यूरोप में एकांकी नाटक ने मनोरंजन के साथ साथ सामाजिक सुधार और शिक्षा का काम भी किया और इस प्रकार साहित्य के एक कोने में एक सुदृढ़ स्थान प्राप्त कर लिया। एक आलोचक ने उक्त घटना का ज़िक्र करते हुए लिखा है :—

"In that event nothing better could have happened to it, for if it proved to be a death blow to the curtain raiser, it resulted in the birth of the short play as a new, vivid and distinct form of Dramatic Art."

अर्थात्, "उस समय एकाकी नाटक के लिये इस से बेहतर कोई बात न हो सकती थी, क्योंकि अगर एक ओर यह (बंदर के पंजे की लोकप्रियता) पर्दा उठाऊ की मृत्यु का कारण बनी तो दूसरी ओर इससे उस सक्षिप्त नाटक का जन्म हुआ जो कला का एक अभिनव, महत्त्वपूर्ण और पृथक् अंग बना।"

भारत में एकांकी की लोकप्रियता

दुर्भाग्य से भारत में रंगमंच का अभाव है इस लिये एकाकी को जो उन्नति मिलनी चाहिए थी, वह उसे नहीं मिली। स्टेज की अनुपस्थिति में भारत के कलाकार एकाकी के विभिन्न गुणों और लक्षणों को समझने में अशक्त है और न ही वे इस कला के विभिन्न पहलुओं को जानते हैं। इस लिये अच्छे मौलिक एकाकी अभी तक अधिक संख्या में दिखाई नहीं देते और अधिकाश अनूदित अथवा अपनाए हुए नाटक पत्र-पत्रिकाओं की शोभा बढाते हैं, किन्तु जिस तेज़ी से हिन्दुस्तानी भाषाओं में ये अनुवाद हो रहे है, उससे कम से कम एक बात का पता चलता है कि भारत

के उर्दू तथा हिन्दी भाषी इसे क़द्र की निगाह से देखते हैं और यदि अच्छे मौलिक एकाकी देश की विभिन्न समस्याओं पर लिखे जाएँ तथा देश के वास्तविक जीवन का प्रतिबिम्ब उनमें दिखाई दे, तो वह दिन दूर न रहेगा जब भारत का मृत-प्राय रंगमंच फिर जीवन की अँगड़ाई लेकर जाग उठेगा और भारत की अपनी समस्याओं का हल करने में वही लाभ पहुँचाएगा जो यह इंग्लिस्तान, अमेरिका अथवा यूरोप में पहुँचा रहा है।

इस समय दूसरी चीज़, जिस ने एकाकी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, रेडियो है। यद्यपि इस देश में रेडियो को जारी हुए बहुत कम समय हुआ है, किन्तु रेडियाई नाटक को जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है, कम से कम उससे इस बात का पता तो चल जाता है कि यदि स्टेज पर एकाकी नाटक खेले जायें तो वे कम लोकप्रिय न होंगे। कारण यह कि रेडियो की अपील मात्र कानों तक है, किन्तु रंगमंच कानों के साथ आँखों को भी अपील करता है। दूसरे जहा रेडियो में हमें सारे के सारे अभिनय की कल्पना करनी होती है, वहा हम स्टेज पर इसे अपने सामने होता देखते हैं।

यहीं एक दूसरा प्रश्न पैदा हो जाता है। वह यह, कि जब हिन्दुस्तानी भाषा का अपना कोई रंगमंच ही नहीं—न हिन्दी का और न उर्दू का—तो रंगमंच के लिये एकाकी लिखने से मतलब ? 'हँस' में "क्या एकाकी नाटक का साहित्य में कोई स्थान

नहीं" शीर्षक मेरे लेख के उत्तर में श्री जैनेन्द्र ने भी ऐसी ही बात लिखी थी। इस सम्बंध में तब भी अपने उत्तर में मैंने यही विनय की थी और अब भी मैं यही निवेदन करना चाहता हूँ कि—जरूरत आविष्कार की जननी है—यह कथन अभी पुराना नहीं हुआ। यदि हम महसूस करते है कि भारत में रंगमंच के पुनरुत्थान की अवश्यकता है, तो हमें उस समय तक हाथ पर हाथ धरे न बैठे रहना चाहिए, जब तक कोई महत्त्वाकाक्षी फिर से रंगमच की व्यवस्था न करे।

वास्तव में यदि स्थिति पर ठंडे दिल से विचार किया जाए तो मालूम होगा कि एकाकी का तो गुण ही यही है कि इसके लिये किसी बड़े थीएटर हाल अथवा रंगमंच की आवश्यकता नहीं। बहुत से एकाकी कालेजों, स्कूलों और विभिन्न संस्थाओं की स्टेजों पर भली भाँति खेले जा सकते हैं और उन्हें जनसाधारण की शिक्षा-दीक्षा, समाज सुधार और कला की अभिवृद्धि के लिये काम में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मेरा तो यह भी खयाल है कि रंगमंच से पहले नाटकों की अधिक आवश्यकता ह, इससे पहले कि रंगमच अस्तित्व पाए इस बात की अत्यधिक आवश्यकता है कि भारत की परिस्थितियों के अनुसार समाज, राजनीति, आर्थिक दशा तथा अन्य समस्याओं को छूने वाले एकाकी यथेष्ट संख्या में लिखे जाएँ। आज यदि कोई व्यक्ति एक स्थायी रंगमंच बना ले, अभिनेताओं

का भी प्रबंध कर ले, तो एक दम वह किस प्रकार नाटक प्राप्त कर सकता है। उसके लिये उस सूरत में कोई चारा नहीं रह जाता कि वह पश्चिम के नाटकों का उल्था करके उन्हें स्टेज करे।

इसके अतिरिक्त मैं विनयपूर्वक पूछना चाहता हूँ, कि यदि और दस वर्ष तक भारत में स्टेज इसी प्रमाद की हालत में रहे, तो क्या हमें चुपचाप हाथ पर हाथ रखे बैठे रहना चाहिए? क्या हमें अपनी वर्तमान जड़ता पर संतोष कर लेना चाहिए? उर्दू हिन्दी साहित्य से नाटक अभी पूर्णरूप से निर्वासित नहीं हुए, और इधर तो स्व० प्रसाद जी ने नाटक साहित्य में नयी जान सी डाल दी है। हुआ सिर्फ यह है कि दर्शकों के बदले अब वे अधिकतर पाठकों के लिये लिखे जाने लगे हैं। अब केवल शिक्षितवर्ग ही उनका रसास्वादन कर सकता है और भारत के करोड़ों अशिक्षित उनके रस से वंचित ही रह जाते हैं। ज़रूरत इस बात की है कि एक एक्ट के अच्छे नाटक लिखे जाएँ, खेले जाएँ और रंगमंच द्वारा उन लोगों के दिलों तक पहुँचाए जाँए जो अभी तक साहित्य तथा कला में किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं लेते।

यद्यपि एकांकी (जिन में झाकियां* भी शामिल हैं) अभी

* झाँकियाँ प्राय: एक दृश्य की होती हैं, हालांकि एकांकी एक से लेकर सात सात अ ठ आठ दृश्यों तक के लिखे गए हैं, और प्रायः ये एक घटना अथवा विचार का संक्षिप्ततम चित्रणमात्र होती हैं—जैसे प्रस्तुत संग्रह का एकांकी "पहेली"।

अपनी आरम्भिक स्टेज से भी नहीं गुज़रे, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने इस बात का सबूत दे दिया है कि उन्हें हँसी में नहीं उड़ाया जा सकता।

एकांकी और इसकी कला पर इस संक्षिप्त से प्राक्कथन में विस्तार से कुछ नहीं लिखा जा सकता। लेकिन मैं इतना जरूर कहना चाहता हूँ कि यदि आधुनिक युग के संक्षिप्त नाटकों की कोई अपनी कला है, तो एकांकी की भी है और यहाँ मैं एकांकी तथा उसी तरह की दूसरी चीजों में कुछ अन्तर बताने का प्रयास करूँगा।

एकांकी और बड़े नाटक

आधुनिक युग के अपेक्षाकृत बड़े नाटकों और एकांकियों में, (जिन में झाँकियां भी शामिल है) वही अन्तर है जो पुराने ज़माने के पाच पाच अंकों और बीस बीस दृश्यों के नाटकों और आधुनिक युग के तीन चार अंक के सक्षिप्त नाटकों में है। यदि हम आधुनिक युग के नाटकों को पुराने नाटकों के संक्षिप्त संस्करण कह सकते हैं तो इन एकांकियों को भी आधुनिक नाटकों क संक्षिप्त सस्करण कहा जा सकता है। दोनों में उतना ही अन्तर है जितना उपन्यास और कहानी में। जिस प्रकार कई उच्च कोटि के उपन्यास-कार सफल कहानिया नहीं लिख सकते, इसी तरह कई नाटक-कार एकांकी और झाँकियाँ लिखने में कठिनाई महसूस करते हैं।

नाटक कला के ये दोनों अंग (बड़े नाटक और एकाकी) एक दूसरे से पृथक् अपना अलग अलग अस्तित्व रखते हैं—इसी प्रकार जैसे प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बनाने की कला (Land scape painting) और जीवित वस्तुओं के चित्र खींचने की कला, दोनों चित्र कला की दो विभिन्न शाखाएँ हैं और अपना अलग अलग अस्तित्व रखती हैं और एक में निपुण होने का अर्थ दूसरी में निपुणता पाना नहीं।

नाटक की इन दोनों किस्मों में एक बड़ा अन्तर यह है कि उपन्यास की भाँति लम्बे नाटक में नाटककार शब्द पर शब्द, वाक्य पर वाक्य और दृश्य पर दृश्य के प्रयोग से इच्छानुसार प्रभाव और कैफ़ीयत पैदा करने में सफल हो जाता है। एकाकी में लेखक के पास घटना के विस्तार और पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिये कोई अवसर नहीं होता। उसकी पार्श्वभूमि भी सीमित होती है। उसके पात्रों की झाँकी मात्र ही दर्शक देख सकते हैं। एकाकी में समस्त परिस्थिति को एक दम समझ लेना अत्यावश्यक होता है। हो सकता है कि एक बहुत अच्छे एकाकी को देखने वाला यह भूल जाए कि यह सब घटना इस इतने कम समय में कैसे घटित हो गई।

एकांकी और कहानी

कुछ आलोचकों का विचार है कि एकाकी कहानी का ही रंगमंच पर खेला जाने वाला संस्करण है। श्री० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

ने एक स्थान पर ऐसा लिखा भी है। किन्तु इस बात के बावजूद कि बहुत सी अंग्रेजी कहानिया सफलता के साथ एकाकी नाटकों में परिवर्तित की गईं और कुछ एकाकी सुन्दर कहानियों में परिणत किए जा सकते हैं, मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि हर कहानी सफलता के साथ एकाकी नहीं बनाई जा सकती।—और इसी तरह नहा हरेक झॉकी या एकाकी सफल कहानी में बदला जा सकता है। वास्तव मे साहित्य के इन दो अगों में उद्देश्य का अन्तर है। इस उद्देश्य के अन्तर से दोनों की टैकनिक (कला) में भिन्नता आ गई है। कहानी का उद्देश्य पाठक के मनोरजन और दृष्टिकोण को सामने रखना है और नाटक का उद्देश्य दर्शक की दिलचस्पी तथा उसके मनोरंजन को! इसी लिये जहा कहानी में कई बार (जैसा कि दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक कहानियों में) घटना कोई इतनी जरूरी नहीं होती, वहा नाटक में यह बेहद ज़रूरी है।

दूसरे, चूंकि प्रत्येक नाटक में प्रत्येक बात संभाषण के द्वारा ही दर्शकों तक पहुँचती है, इस लिये आवश्यक है कि यह संभाषण ज़ोरदार हो। क्योंकि नाटककार कहानी लेखक की भाँति स्वयं कुछ नहीं कह सकता। कहानी-कार सब के सब पात्रों का चित्रण अपनी ओर से कर सकता है लेकिन नाटककार ऐसा नहीं कर सकता। जो कुछ उसे कहना होता है वह पात्रों के सभाषण द्वारा ही कहता है।

इस लिये यह बात स्पष्ट है कि बहुत सी उत्तम मनोवैज्ञानिक कहानियां, जिन में लेखक किसी एक व्यक्ति के मानसिक भावों का विश्लेषण करता चला जाता है और जिन में कथानक को इतना महत्व नहीं दिया जाता, सफलता के साथ रंगमंच पर नहीं दिखाई जा सकतीं। इसी प्रकार वे एकाकी, जिनका उद्देश्य किसी एक घटना को दिखाना मात्र होता है, अच्छी सफल कहानी में परिवर्तित नहीं किये जा सकते। क्योंकि कहानी मात्र किसी घटना का बयान ही नहीं।

एकांकी और संभाषण

इसी प्रकार ग़लती से कुछ लोग एकाकी को संभाषण का ही नाम देते हैं। भाई चन्द्रगुप्त ने एक बार, अनारकली बाज़ार में आमने सामने खड़े होकर संभाषण की सूरत में विभिन्न वस्तुओं का विज्ञापन देने वाले "चचा भतीजा" के संभाषण को व्यंग से एकाकी का ही दर्जा दिया था* और कहा था कि एकाकी के दो गुण सिर्फ 'दिलचस्पी' और 'अर्थपूर्ण वार्तालाप' हैं।

इस से ज्यादह ग़लत धारना नहीं हो सकती। जिस प्रकार कथानक, संभाषण, चरित्र चित्रण, वातावरण, गठन, आदि कहानी के पृथक गुण हैं, किन्तु हम इन में से किसी एक अंग को कहानी नहीं कह सकते; जिस तरह केवल टांग या हाथ आदमी नहीं

---

* हंस मई १९३८

कहला सकते, उसी तरह हम मात्र संभाषण को, चाहे वह कितना भी दिलचस्प और अर्थपूर्ण क्यों न हो, नाटक का दर्जा नहीं दे सकते। नाटक के लिये, जैसा कि मैंने कहा—तन्मयता (Concentration) एक महत्वपूर्ण अंग है। संभाषण एक साधन है जिस से दर्शकों को तन्मय रक्खा जाता है। किन्तु तन्मय करने वाली चीज केवल संभाषण नहीं, बल्कि वह घटना अथवा मनोवैज्ञानिक सत्य है, जो संभाषण और अभिनय के द्वारा दर्शकों को दिखाया जाता है। सफल नाटक का सब से बड़ा गुण यह है कि वह आरम्भ से अन्त तक दर्शकों को तन्मय रखे (यह बात अच्छे चुस्त संभाषण से भी हो सकती है।) और जब वे उठें तो यह महसूस हो कि उनका समय और पैसा व्यर्थ बर्बाद नहीं हुआ। (और यह बात केवल संभाषण से सम्भव नहीं)।

एक भ्रान्ति

एकांकी के सम्बन्ध में जो इस प्रकार की ग़लत भ्रान्तियां पैदा हो जाती हैं, उनका सब से बड़ा कारण यह है कि एक अंक के नाटक विभिन्न उद्देश्यों को सामने रख कर लिखे जाते हैं। उन में से कई ऐसे भी होते हैं, जिनका किसी स्टेज पर खेला जाना लेखक को वाञ्छित नहीं होता, बल्कि लेखक यह चाहता है कि किसी कठिन समस्या को दिलचस्प संभाषण के रूप में अपने पाठकों के सामने उपस्थित कर दे।

इसी तरह प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में जो संभाषण प्रकाशित होते हैं उन्हें भी ग़लती से लेखक अथवा सम्पादक नाटक का नाम दे देता है और पाठक भी इस बात पर विचार किए बिना कि इस नाटक के लिखने में लेखक का उद्देश्य उसका स्टेज पर खेला जाना भी था या नहीं, उसे नाटक ही समझ लेता है। रेडियाई नाटक भी जब प्रकाशित होते हैं तो उनमें अभिनय के मुकाबले में संभाषण के आधिक्य को देख कर पाठक संभाषण को ही नाटक समझने की ग़लती करते हैं; हालांकि स्टेज पर खेला जाने वाला एकाकी सर्वथा पृथक चीज़ है और अपनी अलग टैकनिक रखता है।

यूरोप में इस समय कई तरह के एकाकी लिखे जाते हैं—सुखात दुखात, प्रहसन, व्याङ्गक, मनोवैज्ञानिक, शिक्षाप्रद या किसी विशेष उद्देश्य अथवा परिणाम को सामने रख कर लिखे जाने वाले। भारत में भी मसाले की कमी नहीं। जनसाधारण की समस्यायें यूरोप के लोगों से भी पेचीदा हैं और मनोवैज्ञानिक सत्य की भी उन में कमी नहीं। आवश्यकता मात्र इस कच्चे मसाले (Raw material) को सावधानी से काम में लाने की है। फिर वह दिन दूर न रहेगा जब भारत का रंगमंच अपनी वर्षों की नींद से जीवन की अंगड़ाई लेकर जाग उठेगा और जनता साहित्य की इस नयी शाखा के फलों का रसास्वादन कर सकेगी।

प्रस्तुत संग्रह

एकाकी, उसके संक्षिप्त इतिहास और उसकी कला का संक्षिप्त विवरण देने के बाद मैं प्रस्तुत संग्रह के नाटकों के बारे में भी एक दो शब्द कह देना चाहता हूँ। इस में दुखांत भी हैं सुखांत भी, व्यंग भी और प्रहसन भी। तीन-तीन दृश्यों के दो एकाकी, एक एक दृश्य के चार एकाकी और एक झाँकी इस में संग्रहीत हैं।

इन तीन तीन चार चार दृश्यों के एकाकियों को प्रायः लोग आधुनिक काल के संक्षिप्त नाटकों से मिला देते हैं। यदि किसी सहृदय पाठक ने मेरा नाटक "स्वर्ग की झलक" पढ़ा हो तो वह इस अन्तर को भली भाँति जान सकेगा जो एकाकी (फिर चाहे वह तीन छोड़ सात दृश्यों का ही क्यों न हो) और पूरे नाटक में है। एक बार कहानी की परिभाषा देते हुए भाई चन्द्रगुप्त ने उसे किसी घटना का इकहरा चित्रण बताया था। मेरे विचार में आधुनिक कहानी चाहे किसी घटना का इकहरा चित्रण हो या न हो, आधुनिक स्टेज एकाकी अर्थात् खेला जाने वाला एकाकी अवश्य ही किसी न किसी घटना का (समय तथा स्थान की Unity (गठन) के साथ) इकहरा चित्रण होना है। इसी लिये उस में एक भी शब्द फालतू नहीं लिखा जा सकता जब कि बड़े नाटक का क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत होता है।

रही झाँकियाँ तो ये एक दृश्य के एकाकियों का भी संक्षिप्त

संस्करण हैं। प्रायः ये किसी विचार अथवा घटना का कथानक-हीन चित्रण होती हैं। एकाकी नाटक की इन तीनों किस्मों में क्या अन्तर है, इसका पता 'समझौता', 'लक्ष्मी का स्वागत' और 'पहेली' को एक साथ पढ़ने से भली-भाँति लग जाएगा।

क्षेत्र

प्रस्तुत संग्रह के प्रायः सभी नाटकों का क्षेत्र सामाजिक है। इन सब में समाज की किसी न किसी बुराई को छूने का प्रयास मैंने किया है,—छूने भर का ही, क्योंकि उसका उपचार बताना तो मैं अपने लिये अनधिकार चेष्टा समझता हूँ। वह काम सुधारक का है। एकाकी लेखक का क्षेत्र सीमित है। किसी सामाजिक समस्या की झाँकी मात्र वह दिखा सकता है। न वह उसका विशद वर्णन कर सकता है और न उस समस्या का हल अथवा उस बुराई का उप-चार बता सकता है।

'देवताओं की छाया में' देहात की एक झाँकी उपस्थित करता है। नगर का सामीप्य किसी गाव के लिये लाभकर है अथवा हानिकारक? यह प्रश्न सदैव विवादग्रस्त रहेगा। लेकिन मैं कभी कभी महसूस किया करता हूँ कि नगर में बहुत कुछ कृत्रिम है और गाँव में बहुत कुछ स्वाभाविक तथा सरल और फिर नगर के सामीप्य से निकटवर्ती गाँवों को जो लाभ पहुँचता है वह ऐसे ही है जैसे किसी व्यक्ति का रक्त पहले चूस लिया जाए और फिर सुई द्वारा

कृत्रिम लोहू उसकी नसों में इन्फ्यूज़ (Infuse) किया जाए।— हाल ही में एक सामाजिक नेता ने गावों में ऐसे केन्द्र स्थापित करने का प्रस्ताव किया है जिन में इर्द गिर्द के देहातों का दूध इकट्ठा किया जाए और वहीं उसकी क्रीम और मक्खन निकाल कर शहरों में भेजा जाए। साथ ही उन्होंने यह परामर्श भी दिया है कि सेपेरेटा (Seperata) अर्थात् वह दूध जो क्रीम आदि निकालने के बाद बच जाता है, गावों में बेचा जाए और इसके गुण बता कर देहातियों में इसका प्रचार किया जाए। ऐसे समस्त सुधारों को मैं कृत्रिम रक्त इन्फ्यूज़ करने का ही नाम देता हूँ।

फिर नगरों के समीपवर्ती गावों में जो दूध घी के स्थान पर चाय का इतना रिवाज बढ़ गया है, वह क्या उपरोक्त बात का समर्थन नहीं करता? और यदि पहले एकाकी के अन्त में जलाल यह कहता है कि बच्चों के लिये भी दूध नहीं रहता, तो इस में अत्युक्ति नहीं। अमृतसर से लाहौर को जाने वाली सड़क के समीप बसने वाले छोटे छोटे गावों में जाकर कोई परिस्थिति की विषमता का अपनी आखों अध्ययन कर सकता है।

नगरों के सामीप्य और नगर निवासियों की नक़ल के कारण देहात के घरेलू जीवन में कैसी दुखांत परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं, उनका, तथा हमारी आशाओं और उम्मीदों और हमारे स्वप्नों के महलों पर भावी की जो छाया सी सदैव पड़ा करती है, उसका हल्का-सा

आभास सहृदय पाठकों को 'देवताओं की छाया में' में मिलेगा।

बीसवीं सदी की समस्त प्रगति के बावजूद, आज ६५ प्रतिशत विवाह पुराने ढंग पर हो रहे हैं। इनके कारण मध्यवर्ग के घरों में कैसी कैसी दुखद झाँकियाँ उपस्थित हो जाती हैं, उनका कुछ आभास सहृदय पाठक "विवाह के दिन" में पाएँगे। यह सब कुछ काल्पनिक नहीं। सत्य पर इसका आधार है। आये दिन जो हम सुनते हैं कि अमुक युवक ने अपनी पत्नी को पीटा; अमुक का जीवन विवाह के पश्चात् विषादमय हो गया; अमुक ने अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया—इन सब की तह में विवाह की पुरानी प्रथा काम नहीं करती क्या? और क्या इसी प्रथा के कारण कई नवयुवक जीवन को संयत रूप से जीना नहीं छोड़ देते? वह घटना जो नाटक में अत्यन्त दुखद घटना बनते बनते रह गई, कौन कह सकता है कि (Grim tragedy)* न बन जाती।

"लक्ष्मी का स्वागत" में इसी समस्या का एक दूसरा पहलू प्रस्तुत है। नारी की स्वतन्त्रता, शिक्षा दीक्षा और समानता के समस्त शोर के बावजूद उसका दर्जा अभी भारत में अस्थावर सम्पत्ति (Chattel) से अधिक नहीं। जिस तरह एक चीज़ के खत्म हो जाने अथवा खो जाने पर, हम बिना किसी उद्वेग के दूसरी ले आते हैं, उसी तरह एक स्त्री के मर जाने पर पुरुष तत्काल

---

* अतीव दुखांत नाटक।

दूसरा विवाह कर लेते हैं। समाज उन हृदय-हीन व्यक्तियों से किसी प्रकार की घृणा नहीं करता, बल्कि उन्हें ऐसा करने में योग देता है और घृणा प्रायः वह उनसे करता है, जो अपनी भावनाओं का यों गला घोंट कर ऐसा करने का साहस नहीं कर पाते। दूसरा विवाह करने में जिस जल्दी से काम लिया जाता है कई बार वह जुर्म की हद को पहुँच जाती है।

'लक्ष्मी का स्वागत' इलाहाबाद विश्वविद्यालय और सूरत कालेज में सफलता पूर्वक खेला गया है। इसका रेडियो संस्करण चार बार लखनऊ से और दो बार लाहौर से ब्राडकास्ट हो चुका है और इसके अनुवाद उर्दू और पंजाबी भाषा मे भी प्रकाशित हुए हैं।

'समझौता' और 'अधिकार का रक्षक' यद्यपि सरसरी नज़र से देखने पर प्रहसन मात्र दिखाई देंगे, किन्तु यदि सहृदय पाठक इन्हें गहरी दृष्टि से देखने का प्रयास करेंगे तो उन्हें पहले के हास्य में बेकारी का छटपटाना साफ सुनाई देगा—उस बेकारी का, जो हमारे मध्यवर्ग को अन्दर ही अन्दर घुन की भाँति खाये जाती है। दूसरे में उस रयाकारी तथा कपट (Hypocrisy) का पता चलेगा जिसके कारण देश की अवस्था समस्त सुधारों के बावजूद अभी तक सुधरने में नहीं आती।

पुरानी कहावत है—एक श्रेष्ठ महात्मा के पास एक बार एक दुखी पिता अपने लड़के को लाया, जिसे गुड़ खाने की बड़ी बुरी

आदत थी और उसने विनय की कि महाराज इस बच्च को गुड़ की आदत हटा दीजिये। महात्मा ने उत्तर दिया कि भाई इसे कल लाना तब मुझ से जो हो सका करूंगा। दूसरे दिन वह व्यक्ति फिर बच्चे को लेगया तब उन्होंने उसे सामने बैठा कर अधिक संख्या में गुड़ खाने के दोष बताए और उसे इस बुरे स्वभाव को त्याग देने के लिये कहा। लड़का उनके उपदेश से इतना प्रभावित हुआ कि उसने फिर कभी गुड़ न खाने की प्रतिज्ञा कर ली। उस समय लड़के के पिता ने पूछा कि महाराज कल आपने किस कारण से उपदेश न दिया था? उन्होंने उत्तर दिया—"मुझे स्वयं कल तक गुड़ खाने की बुरी आदत थी। उस हालत में मेरे कहने का वह प्रभाव बच्चे पर कभी न पड़ता जो मैं चाहता था कि उस पर पड़े। इस लिये पहले मैंने स्वयं गुड़ छोड़ने का प्रण कर लिया फिर बच्चे से कहा।"

हमारे सार्वजनिक नेताओं के व्यक्तिगत जीवन में जब तक कथन और कर्म में अन्तर कम नहीं होता हमारी प्रगति को मुड़ मुड़ कर पीछे आना ही भाता रहेगा।

'पहेली' झाँकी है। इनामी पहेलियों को हल करने में जो समय व्यर्थ में नष्ट किया जाता है, और इस प्रकार मात्र संयोग का आश्रय लेकर धन पाने के जो मिथ्या स्वप्न देखे जाते हैं, उनका चित्रण इस में किया गया है। इतना समय, इतना धन, इतना मस्तिष्क यदि अच्छी लाभदायक स्कीमों को सोचने और चालू

करने में लगाया जाये तो देश का अपार हित हो, किन्तु लाखों शिक्षित आज अपना धन और समय इन पहेलियों के कूपन खरीदने और भर कर भेजने में वर्बाद कर रहे हैं और बेकारों का यह कार लोगों को और भी बेकार बना रहा है।

'जोंक' सोलह आने प्रहसन है। कैसा है? पाठक स्वयं पढ़ कर अनुमान लगा लें।

दुखांत वा सुखांत

यूरोप में आज तक जितने एकाकी लिखे गए हैं, उन में खेले जाने वालों में से अधिकांश हास्य अथवा व्यङ्ग का पहलू लिये हुए सुखांत होते हैं। इसका एक तो कारण यह है कि एकाकी अपने शैशव के गुण को अभी नहीं छोड़ सका। (बचपन में जैसा कि मैंने पहले कहा, यह एक घटिया किस्म का प्रहसन होता था,) फिर इसका दूसरा कारण शायद यह भी है कि थोड़े से समय के लिये जो दर्शक अपनी चिन्ताओं और दुखों को भुलाने के लिये रंगशाला में जाएँ वे अपने मन पर और भी अधिक बोझ लेकर न आएँ। यूरोप के एकाकी नाटकों में प्रथम श्रेणी के दुखांत एकाकी न हों ऐसी बात तो नहीं। Campbell of Kilmhor, The Fortieth Man, Monkey's Paw, Mask, The Price of Coal आदि बेहद दुखांत हैं किन्तु एकाकी नाटकों में अधिकांश सुखांत, प्रहसन अथवा व्यङ्ग हैं।

मैंने स्वयं दुखात लिखे हैं। प्रस्तुत संग्रह में 'देवताओं की छाया में' और 'लक्ष्मी का स्वागत' काफी दुखात हैं। इनके अतिरिक्त मेरा एकाकी 'पापी' भी दुखात है और लोक-प्रिय भी यह काफ़ी हुआ है, किन्तु सामाजिक समस्याओं को हास्य अथवा व्यंगात्मक रीति से निभाने में मैंने एकाकी को अत्यन्त सफल साधन पाया है और यही कारण है कि प्रस्तुत संग्रह के अधिकाश नाटकों में हास्य तथा व्यङ्ग का पहलू पाया जाएगा।

अन्तिम शब्द

एक दो बातें संक्षेप में कह कर मैं इस वक्तव्य को समाप्त करूँगा।

पहली बात तो यह है कि स्वय मैं विस्तार की अपेक्षा संकेत को अधिक पसन्द करता हूँ।

"लड़के का पूछते होंगे" ?

"हां पूछते थे, मैंने कह दिया कि लड़का है, किन्तु मां की मृत्यु के बाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती। परमात्मा ही मालिक है !"

'लक्ष्मी का स्वागत' की इन दो तीन सतरों में जो कुछ कहा गया है, वह पूरे के पूरे पैराग्राफ में भी शायद अच्छी तरह न कहा जा सकता। और फिर नाटक के अन्तिम वाक्य—'मा जी दाने लाओ और दिये का प्रबंध करो' में जो व्यथा है और रस्म की पूर्ति के सम्बंध में जो व्यङ्ग है, मैं चाहता हूँ कि सहृदय पाठक उसकी ओर अवश्य ध्यान दें।

साधारणतया जब कोई व्यक्ति मरणासन्न हो जाता है तो पंजाब में उसे नीचे फर्श पर लिटा देते हैं और जब उसकी सास उखड़ने लगती है तो उसके सिरहाने दाने रख कर दिया जला दिया जाता है। लेकिन इसका महत्व क्या है, इसे अधिकाश लोग नहीं जानते। बस लकीर पीटे जाते है। जहा कहीं मृत्यु अचानक हो जाए या चारपाई से धरती पर लेजाते लेजाते हो जाए तो रस्म की पूर्ति के लिये शव के हाथ से दाने छुआ कर सिरहाने रख दिए जाते हैं 'लक्ष्मी का स्वागत' की अन्तिम पक्ति इसी ओर संकेत करती है।

प्रथम नाटक की अन्तिम पंक्ति भी इसी प्रकार साकेतिक है।

इसके अतिरिक्त कुछ नाटकों के शीर्षक भी साकेतिक है— 'देवताओं की छाया में', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'अधिकार का रक्षक', 'पहेली', आदि आदि। मैं अपने पाठकों से आशा रखूंगा कि वे उनका ठीक अर्थ ही लेंगे। गत वर्ष जब 'लक्ष्मी का स्वागत' एक संग्रह में सम्मिलित हुआ था तो एक विद्वान् आलोचक ने 'लक्ष्मी' का अर्थ 'सम्पत्ति' लगा कर इस पर कटाक्ष किया था। किन्तु नाटक में 'लक्ष्मी' का अर्थ 'धन' कदापि नहीं। यह ठीक है कि लड़के के विवाह में वर पक्ष को काफी धन मिलने की भी सम्भावना होती है, किन्तु यहा 'लक्ष्मी' नव वधु को कहा गया है। पंजाब में एक लोकोक्ति है जो सगाई आदि के अवसर पर प्रयोग में लाई जाती है—'घर आई लक्ष्मी को वापस न करना चाहिए'—इसी लोकोक्ति

की ओर नाटक में संकेत है ।

विद्वान् आलोचकों और सहृदय पाठकों से मैं विनय करूंगा कि वे नाटकों को सरसरी नज़र से पढ़ने पर परिणाम न निकालें। मैंने इनपर काफी विचार किया है और बहुत सी बातें Symbols (संकेतों) में दी हैं। उन सब को ध्यान में रख कर यदि कोई आलोचक मुझे इन में से किसी की कोई त्रुटि बताने की कृपा करेंगे तो मैं उनका हृदय से आभार मानूंगा, क्योंकि त्रुटि से कोई चीज़ भी खाली नहीं होती ।

विनीत—

प्रीतनगर

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

१४. १२. ४०

नोट—इन समस्त नाटकों में नाम और स्थान काल्पनिक है ।

नाटककार

देवताओं की छाया में

[दुखांत व्यंग]

पात्र

मरजाना

नूरी

वेगा

रज्जी

भरी

रहीम

सादिक

चौधरी, जलाल, ताफी आदि !

[उन्नति के इस युग में, जब नागरिकों के जीवन का स्तर दिन प्रति दिन बढ़ रहा है, और नगरों के तंग, गंदे, सीलदार मकानों में उनका दम घुटने लगा है, बड़े बड़े नगरों के इर्द गिर्द मीलों तक नयी आबादियां बसती चली जा रही हैं, जिन में से कई गावों के समीप तक चली गई हैं।

काकूके एसी ही एक नयी आबादी के पास दो अढ़ाई सौ कच्चे घरों का एक गांव है। एक व्यवसायी सोसाइटी ने, जो शिष्ट व्यवसाय की कला निपुण है, इसके पास तीन चार सौ एकड़ ऊसर धरती सस्ते दामों मोल लेली है, और फिर इस अपील पर कि इस धरती पर एक नये समाज की नींव रखी जाएगी, जो सम्प्रदाय के स्थान पर मानव को अपने प्रेम का भाजन बनाएगा, और देश के दीन हीन कृषकों का सुधार करेगा, मेंहगे दामों प्लाट बेच कर 'देव नगर' नाम से एक नयी बस्ती का सूत्रपात कर दिया है। इर्द गिर्द के श्रमी वहा सुबह सात आठ बजे से शाम के सात आठ बजे तक सख्त सर्दी अथवा सख्त गर्मी में काम करते हैं और पांच छै आने दैनिक मजूरी पाते हैं और वे लोग पत्र पत्रिकाओं में सीना फुला फुलाकर एलान करते हैं कि उन्होंने लाखों रुपये देहात में वितरण कर दिए हैं।

और उनके नगर के निकटवर्ती गाव सम्पन्न हो रहे हैं।]

इसी काकूके के एक आंगन में पर्दा उठता है।

[मरजाना बैठी ओखली में धान कूट रही है। ओखली धरती में गड़ी है और इस के इर्द गिर्द धरती से जरा जरा ऊची मिट्टी की तह जमा कर गोवरी* कर दी गई है। मूसल की धमक से धान उछल उछल कर बाहर विखर विखर जाते हैं और वह उन्हें फिर समेट कर ओखली में डाल कर कूटे जाती है।]

[मरजाना सोलह सत्रह वर्ष की ग्रामीण युवती है। शरीर भरा गठा है, रंग गोरा लेकिन नासाफ, बाल रूखे और उलझे—दो दो चार चार लटें दोनों ओर कपोलों पर विखरी हुई हैं। ओढ़नी के नाम पर पुरानी गर्म लोई का टुकड़ा सिर पर है, जो धान कूटते समय कंधों पर आ रहता है।]

[ओखली के दायीं ओर, मरजाना के पीछे, रसोई है जिसका चौखट-हीन दरवाजा कोने में है। सामने दो कोठड़ियां हैं, जिनमें से एक का दरवाजा खुला है और एक का वंद, एक तीसरी कोठड़ी का दरवाजा रसोई के वे-चौखट के दरवाज़े में से दिखाई देता है। रसोई की दीवार सात आठ फुट से कुछ ही ऊची है। इसमें झरोखा है जिसमें से धुआं निकल कर दीवार को सियाह कर चुका है। इसी झरोखे के नीचे खूँटी से छाज लटक रहा है।

---

*गोबर में मिट्टी डाल कर लीपना।

बायीं ओर तथा रसोई के इधर को दायीं ओर, कच्ची, रसोई जितनी ही ऊंची चार दीवारी है।

आंगन में एक चारपाई पड़ी है, जिसके पाये और बान (बाध) बेहद घटिया किस्म का है। इसी चारपाई के पास बायीं ओर को कुछ हट कर धरेक (बकायन) का एक नवयुवक पेड़ है, जो सर्द हवा के झोंकों से कभी कभी ठिठुर उठता है।

मरजाना चुप चाप धान कूटती है। खांजन* का ढेर उसके पास लगा है। कार्तिक को बीते कुछ ही दिन गुज़रे हैं। आकाश पर आज सारा दिन बादल रहे हैं और धूप अब निकली भी है तो श्वेत श्वेत सी, मुरझाई मुरझाई सी, यक्ष्मा से पीड़िता की मुस्कान की भाँति—सुर्खी कहा, पीलापन तक उस में नहीं है।

सर्द हवा का एक झोंका आता है और एक झुरझुरी सी लेकर तथा ओढ़नी को सिर पर करके वह तीव्र गति से मूसल चलाने लगती है।

गली के दरवाज़े से भागती पर ठिठुरती हुई नूरी आती है और धम

नोट—(रंगशाला के निर्देशक के लिये) रसोई दर्शकों की दायीं ओर रंगमंच के आधे पिछले हिस्से की ओर है, रसोई के इधर की ओर आंगन की दायीं दीवार के साथ कुछ पौधे लगे हुए हैं। मरजाना इस तरह बैठी है कि रसोई उसके पीछे और सामने की कोठड़िया उसके दायीं ओर को हैं, धरेक का पेड़ और गली का दरवाजा सामने है। गली का दरवाज़ा काफी इधर को है।

*कूटे हुए झोने को पंजाब में खाजन कहते हैं।

से आकर मरजाना के सामने बैठ जाती है, मरजाना नहीं बोलती, सिर नीचा किए चुप चाप धान कूटे जाती है।]

नूरी—

मरजी, मरजी !

(मरजाना चुप मूसल चलाए जाती है।)

—(प्यार से) मरजानी !

(मरजाना चुप)

—(चिढ़ कर शरारत से) ई मर-जानी* !

मरजाना—

(सिर उठाकर और झटके से बालों की लटों को पीछे करके) मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है नूरी कि गाली न दिया करो !

(फिर मूसल चलाती है।)

नूरी—

ओहो, बड़े मिज़ाज तेज़ हैं मेरी बीबी के, आज रहमे से झगड़ा हो गया होगा ना......

मरजाना—

(कूटना छोड़कर) मै कहती हूं तुम बाज़ न आओगी !

(मुख लाल हो जाता है।)

नूरी—

और मैं पूछती हूँ बंदर की बला तवेले के सिर क्यो ? भाई रहीम रूठ गए होंगे तो मान जाएँगे । कब तक रूठेंगे ? आख़िर पड़ना तो

* मर-जानी पंजाबी की आम घरेलू गाली है, मरने योग्य ।

उन्हे एक दिन तुम्हारे ही पाँवों पर है ना, आज मँगेतर हैं तो कल......

मरजाना—

(मूसल उठाकर) तू पिटे बिना न मानेगी।

[नूरी उठकर भागती है, मरजाना मूसल उठाकर उसके पीछे भागती है। दोनों चारपाई के इर्द गिर्द चक्कर काटती हैं, धरेक का पेड़ धीरे धीरे हिलता है।

बेगां तीसरी कोठड़ी से, रसोई के दरवाजे में से होती हुई, निकलती है। खूंटी से छाज उठाती है।]

बेगां—

अरी यह क्या धमाचौकड़ी मचा रखी है। यह धान कूटे जा रहे हैं या ज़मीन !

[ओखली के पास बैठकर खांजन फटकने के लिये छाज में भरती है।]

—शर्म नहीं आती तुझे।

[नूरी धम से आकर उसके पास बैठ जाती है। तनिक लज्जित-सी होकर मरजाना भी आ बैठती है, मूसल चलाने लगती है। बेगा धान फटकती है।]

—इतनी बड़ी हो गई है, अभी बच्चों की तरह भाग दौड़ कर रही है, तुम्हारे जितनी लड़कियां तो दो दो बच्चों की माएँ हैं। (हाथ से भूसी चावलों से अलग करती हुई) और क्यों री नूरी, कोई काम नहीं तुझे ?

नूरी—

मै तो चची, भरी के पति की बात सुनाने आई थी कि यह मेरे पीछे पड़ गई।

मरजाना—

(कूटना छोड़ कर) गाली नहीं दी तूने ?

नूरी—

मैंने गाली दी, अल्लाह् कसम मैंने तो प्यार से मरजानी कह कर बुलाया था।

मरजाना—

मर...जानी !

बेगां—

(फटकना छोड़कर) क्या हुआ भरी के शौहर× को।

नूरी—

मैंने 'मर-जानी' कब कहा, रूठी बैठी है किसी से और लड़ती है किसी से, आ लेने दे भाई रहीम को......

[शरारत से मरजाना की ओर देखती है, मरजाना आग्नेय दृष्टि से एक बार उसकी ओर देख कर फिर जल्दी जल्दी धान कूटने लगती है।]

बेगां—

(उत्सुकता से) भरी के खाविंद× की क्या बात थी !

× पति।

नूरी—

कल टकुआ‡ लेकर अपनी सास के घर जा पहुँचा। रज्जी लाहौर गई हुई थी। घर मे उसकी बहिन और उसकी लड़की थी। वह भरी को जबरदस्ती उठाने लगा। बहिन ने रोका तो पिल पड़ा उस पर। कहने लगा मैं कत्ल कर दूंगा सब को। उसने हाय तौबा मचाई तो लोग इकट्ठे हो गए।

[रज्जी क्षतविक्षत, परेशान और सजल आंखें लिये प्रवेश करती है]

रज्जी—

(आते आते) सुनी मरजी की अम्मा तूने इस लड़के की बात? मैं तो अभी आई लाहौर से, मालूम हुआ कि रात कत्ल करने चढ़ दौड़ा। (बैठकर आँसू पूछते हुए आर्द्र कंठ से) मेरी बहिन तक पर हाथ उठाया उसने। मैं तो अब पंचायत में फैसला करवा के रहूगी।

वेगा—

मैंने अभी नूरी से सुना, पर वह तो गया हुआ था।

रज्जी—

गया था जहन्नुम मे। यहां हलवाई की दुकान खोली थी। जो बनाता था वह अपने यारों दोस्तों को खिला देता था कि वे हमे तंग करें। छै रुपया निगोड़ा साल का किराया, वह तो दुकान से निकाल न सका और क्या तीर मार लेता? फिर फेरा लगाने लगा, पर फेरा लगाना क्या आसान है? जवानों की मौत मरना है—ऊसर में खोंचा

‡ पतली सी लाठी के आगे कुल्हाड़ी का फल लगा होता है उसे टकुआ कहते हैं।

उठाए गांव गांव फिरना, पैसा पैसा करके दाम बटोरना। उसे छोड़ तांगा चलाने लगा। फिर सुना था फ़ौज में भरती होने चला गया है। मैंने सुख की सांस ली थी। पर कल फिर कहीं आसमान से आ टपका।

[धीरे धीरे सिसकने लगती है। बेगां एक दो बार धान फटकती है। मरजाना चुप चाप अपने विचारों में मग्न धान कूटे जाती है।]

रज्जी—

(आंसू पोंछकर) करने को काम की क्या कमी है ? अपनी खेती बाड़ी तो ख़ैर गई भाड़ में, खेत ही मेरे कमाऊ ने गिरवी रख दिए। पर पास नगर बस रहा है। खुदा ने घर बैठे रोज़ी दी है। दूसरे लड़के भी तो मजूरी करते हैं। लेकिन मजूरी को तो वह अपनी हतक* समझता है (फिर गला भर आता है) आप बेकार फिरता है और गुस्सा निकालता है मेरी गरीब बेटी पर।

(गला साफ करती है और दुपट्टे से आंसू पोंछती है।)

बेगां—

(फटकना छोड़कर) हां और कुछ नहीं तो पांच छै आने रोज़ तो कमा कर ला ही सकता है।

रज्जी—

कमा कर क्या लायगा खाक़। उसे तो उनकी रीस (नक़ल) की पड़ी हुई है। 'मैं इसे पर्दा न करने दूंगा' 'मैं इसे सैर करने ले

*अपमान।

जाया करूंगा'। 'यह कुछ पढ़ती पढ़ाती नहीं'—कोई पूछे तूने आठ जमातें पढ़ के कौन सी कलक्टरी कर ली है?—दो एक बार लाहौर गया, वहां से खुशबूदार साबन, तेल और न जाने क्या क्या फ़िजूल की चीज़ें ले आया। जो दस बीस बीघे ज़मीन थी, इन्हीं लच्छनों के मुँह गिरवी रख दी, भरी की 'टूम्बें'* तक बेच बाच कर खा डालीं। और इस पर दम वही है कि मैं टोकरी न उठाऊंगा। भला बीबी बताओ हम उन अमीरों की बराबरी कर सकते हैं?

बेगां—

अल्लाह अल्लाह करो!

(सहानुभूति से भरी लम्बी सास खींचती है।)

रज्जी—

मैं तो किसी को मुँह दिखाने की नहीं रही मरजी की अम्मा! सब के खिलाफ़ होकर तो मैंने यहां नाता किया। भरी के ताया अपने लड़के के लिये कितना ज़ोर दे रहे थे? पर ननद पीछे पड़ी थी इस अपने कपूत के लिये! और फिर अल्लाह जानता है जो मैंने एक पैसा भी लिया हो। सोचती थी, सब यही कहेंगे कि रांड लड़की का दाम लेकर मौज उड़ा रही है।

[बेगां फिर खांजन फटकने लगती है। मरजाना चुप चाप धान कूटे जा रही है। जैसे उसे भरी की इस अम्मा

---

* गहने।

की दुख-गाथा से कोई दिलचस्पी न हो, अथवा वह अपने ही किसी दुख में निमग्न हो]

रज्जी—

(पूर्ववत् आर्द्रकंठ से) मैं तो कुछ नहीं चाहती भाई (हाथ को हवा में फेरती है) वह चोरी करे, यारी करे, दुकान डाले, तांगा चलाए, बस हमें खुलासी दे।

[उठकर पौधों में गला साफ करने जाती है फिर आकर बैठ जाती है]

नूरी—

फूफी, अगर वह लेजाना चाहता है तो तुम क्यों नहीं भेज देतीं उसके साथ ?

रज्जी—

न बीबी अब नहीं। दो बार भेज चुकी हूँ। लेकिन वह उसे पीटता है। उसकी परदादी तक ने जो बातें न कीं वे सब उसे करने को कहता है। नहीं करती तो गड़ासा और टकुआ दिखाता है। भरी को तो तुम जानती हो, सारा गांव उसकी गवाही देगा। उस बेज़बान का क्या है ? जैसे धरती को पीट लिया, तैसे उसे पीट लिया ! जमीन जायदाद खुद गिरवी रख दी, जो दो गहने थे, खुद उड़ा डाले। अब गुस्सा उस पर उतारता है। भरी के ताया उस दिन ननद के घर गये, यह सुन कर कि भरी को पीटा जा रहा है। बस उन्हे देख कर तो सादिक को खून चढ़ गया। कहने लगा मैं इसे यहीं कत्ल कर दूंगा। तब उस भले मानुस ने कहा कि बेटा तू कत्ल क्यों करेगा,

मैं ही इसे साथ ले जाता हूँ और अभी दस दिन नहीं हुए इस बात को कि टकुआ लेकर चढ़ दौड़ा (धीरे धीरे सिसकती है, फिर रोते रोते) न भाई मैं नहीं भेजती (फिर आंसू पोंछकर) वख़शो बी बिल्ली चूहा लँडोरा ही भला (कानों तक हाथ ले जाती है) भाड जाय सोना जो कान खाय। मैं तो बीबी, पहले ही दुखो की मारी हू। भरी दो वर्ष की थी जब इसके अब्बा का इन्तकाल× हो गया। तब से जाने किस तरह मेहनत मजूरी कर के इसे पाला था। सुनती थी लड़का अच्छे मिजाज का नहीं, लोगो से लड़ झगड़ आता है, पर ननद ने कहा—लोगों से कोई लाख लड़े अपने घर से तो सब बना कर रखते हैं। (सहसा गला भरकर) न भाई, मै तो अब कुछ नहीं चाहती, बस उसे खुलासी दे दे।

[आंखों से आसू पोंछती है। ठडी हवा का एक झोंका आता है। धरेक का विटप झुरझुरी सी लेता है]

वेगां—

सूखी ठंड पड़ रही है (झुरझुरी लेकर) हड्डियों में घुसी जा रही है। नूरी बेटी ज़रा रसोई से अँगीठी में कोयले तो डाल ला। हाथ सन्न हो रहे है।

(नूरी उठकर जाती है)

—और तू मरजाना कोई कपडा ले ले, यह पाला तो......

[फिर झुरझुरी लेती है। मरजाना उत्तर नहीं देती। ओखली से कूटे हुए धान निकाल कर बाहर कर देती है

× देहांत

और पास पड़ी टोकरी से और डाल लेती है और फिर मूसल उठा लेती है]

रज्जी—

मैं तो मरजी की अम्मा, परसों ही आजाती पर ठंडी सड़क पर एक इमारत गिर पड़ी।

बेगां—

इमारत गिर पड़ी ?

रज्जी—

हां ठंडी सड़क के ऐन ऊपर, किसी कम्पनी का दफ्तर बन रहा था, तीन मंजिला, ठेकेदार ने मसाला हलका लगाया या ना जाने क्या हुआ, बस तीसरी मंजिल की छत आ पड़ी। बीस एक मज़-दूर नीचे आ गए।

[मरजाना अचानक कूटना छोड़ देती है और सुनने लगती है]

बेगां—

बीस मजदूर नीचे आगये! अल्लाह रहम करे! कोई मरा तो नहीं?

रज्जी—

मेरे भाई का लड़का भी काम करता था, वह तो बच गया सिर्फ एक बाजू ही टूटा, लेकिन कई बेचारे दब गए (तनिक कांपकर) दो बेचारे तो पहचाने भी न जाते थे। लिलटन (लिंटल) की छत्त थी। लोहे की खपचियां उनके आर पार हो गईं, हड्डियां निकल आईं। हे मेरे अल्लाह……

मरजाना—

(अचानक भर्राई हुई आवाज़ में) अम्मा !

(उसके स्वर की चिन्ता और आर्द्रता से सभी चौंक पड़ती हैं)

बेगा—

क्या बात है ?

मरजाना—

रहीम को अब काम पर न जाने देना ?

बेगा—

क्यों बेटी ?

मरजाना—

मैं जो कहती हूँ !

(स्वर और भी आर्द्र है ।)

बेगा—

पर क्यों ?

मरजाना—

इस नगर में भी तो इतने ऊंचे ऊंचे मकान बनते हैं और रहीम भी कुछ ऐसा ही नाम लिया करता है निलटन या लिटन या क्या, जिसकी छतें पड़ती हैं ।

बेगा—

अल्लाह सब का रखवाला है बेटी !

मरजाना—

वह तो है, पर मां कौन जाने (सिहर कर) कोई पांच छै आने रोज़ाना के लिये जान तो नहीं गँवा लेता ।

रज्जी—

बच्ची जिस की आ जाए उसे कौन बचा सकता है और जिस की बनी है उसे कौन मिटा सकता है, उन बेचारों की तो आ लगी थी नहीं हजारों मकान बनते हैं, कोई सब से थोड़े ही गिर पड़ते हैं। और फिर एक तांगे वाला वहां तांगा खड़ा करके आराम कर रहा था, वह मर गया, एक साइकल वाला मर गया। वे कोई मज़दूर थे ?

[मरजाना फिर मूसल की ज़रब लगाती है, पर मन उसका उद्विग्न है, एक चोट नही लगाती कि मूसल रख देती है।]

मरजाना—

पर मां और भी तो काम हैं वहां, सड़कें बनाना, मिट्टी उठाना, पानी लाना, सफ़ाई करना—वह उनमें से कोई क्यों नहीं कर लेता ये 'लिंटन' के मकान......रहीम आज आ जाए, मैं तो उसे न जाने दूंगी।

नूरी—

(शरारत से)अभी से इतना हक़ जमाने...........

[लेकिन ज्यों ही वह मरजाना की ओर देखती है, उसकी आंखों की करुणा जैसा उसका गला दबा लेती है और बाकी शब्द उसके दिल ही में रह जाते हैं।]

वेगा—

(आकाश की ओर देखकर) शाम हो चली है, अभी रहीम आ जायगा तो रोक लेना।

नूरी—

(खड़ी होकर अंगड़ाई लेती है) ये कैसा सिंदूर सा चारो ओर फैल गया है और वह देखो पच्छिम के आसमान* पर बादलों का कैसा नगर सा बस गया है। जाने इनकी छत्तें भी 'लिटन' की होंगी

[दोनों बूढियाँ हँसती हैं, किन्तु मरजाना योग नहीं देती, वह बराबर धान कूटे जाती है।]

नूरी—

लिटन की छत्तें ....

[खुद अपनी बात पर हँसने लगती है। तभी बाहर कुछ शोर मच उठता है और बगुले की भांति भरी दाख़ल होती है]

रज्जी—

(घबरा कर) क्या बात है, क्या बात है ?

भरी—

मकान की छत्त आ रही है।

रज्जी—

(चेहरे का रंग उड़ जाता है) किस मकान की ?

भरी—

वह जो देव नगर मे तीन मंजिल का बन रहा था।

[मूसल छोड़ कर मरजाना दरवाजे की ओर भागती है।]

---

* आकाश

वेगां—

(उठ कर उसके पीछे भागती हुई) मरजी, मरजी !

मरजाना—

मैं जाऊंगी।

बेगां—

पागल हो गई है, जवान लड़कियां इस तरह कहीं बाहर जा सकती हैं ? मोमिन के घर में............

मरजाना—

मां............!

(ओढ़नी से मुंह ढांप कर ऊंचे ऊंचे रोने लगती है।)

वेगां—

(उसके पास जाकर उसके कंधे को थपथपाती हुई) दीवानी न बनो अल्लाह सब का रखवाला है, चलो बैठो मैं देखती हूँ।

[गली के दरवाजे में खड़ी होती है, रज्जी भी उठकर उसके पास चली जाती है, नूरी भी वहीं चली जाती है । मरजाना चुप चाप जाकर ओखली के पास लगभग गिर पड़ती है। सिर्फ भरी धरेक का सहारा लिये मौन खड़ी है। बाहर शोर क्षण-प्रतिक्षण बढ़ता जाता है।]

वेगां—

(बाहर गली में किसी भाग जाते व्यक्ति से) चौधरी...सुनो तो... चौधरी !

[चौधरी हाँफता हाँफता सा दरवाजे में आ खड़ा होता है ।]

चौधरी—

गज़ब हो गया मरजी की अम्मा, वह जो सब से बड़ी कोठी थी न किसी रायसाहिब की, तीन मंज़िलों की, जो इधर की ओर सड़क पर बन रही थी उसकी लिंटल की छत्त आ रही है।

रज्जी और बेगा (दोनों)—

लिंटल की !

(मरजाना फिर आकुल हो उठती है।)

बेगा—

(मुड़ कर) मरजी !

[आवाज चीख़ की हद को पहुँची हुई है जिसमें क्रोध भी है और चिन्ता भी ।]

—बैठ तू वहां मैं जाकर देखती हूँ। खबरदार जो दरवाजे के बाहर पांव रखा ।

(दोनों बाहर जाती हैं।)

नूरी—

ठहरो फूफी मैं भी आई।

बेगां—

तू मरजी के पास बैठ ।

नूरी—

उसके पास भरी बैठी है।

[निकल जाती है। किवाड बन्द हो जाते हैं और वहार से साकल लगने की आवाज़ आती है।

मरजाना फिर धम से वैठ जाती है और ओढ़नी से मुंह ढांप कर रोने लगती है। कुछ क्षण तक खामोशी छाई रहती है जिस में धरेक का पेड़ कांपता है और हवा के झोंकों से अंगीठी पर पड़ी हुई राख उड़ती है। भरी धीरे धीरे मरजाना के पास आती है।]

भरी—

मरजी।

[मरजाना नही वोलती न मुंह से ओढनी हटाती है। हवा का तेज झोंका आता है, वह कांपती है।]

—मरजाना यहां ठंड है, अन्दर चलो।

(मरजाना नहीं हिलती)

—तो फिर अंगीठी में कोयले डाल दूं।

[रसोई से एक वर्तन में कोयले लाकर अंगीठी में डाल देती है। मरजाना चुप वैठी रहती है।]

—अन्दर से लिहाफ़ लाकर डाल दूं। यहा वहुत सर्दी है।

[जाने लगती है। मरजाना उसका हाथ पकड़ लेती है, और ओढनी हटाकर विगलित दृष्टि से उसकी ओर देखती है भरी उसे आलिंगन में कस लेती है।]

—हौंसला करो। खुदा पर भरोसा रखो। अल्लाह सव ठीक

ही करेगा। तुम तो यों ही डर गई हो। अभी भाई रहीम हँसते खेलते आ जाएंगे।

मरजाना—

वह जरूर ....

(ऊचे ऊंचे सिसक उठती है।)

भरी—

(उसके कंधे को थपथपाते हुए) मरजाना, मरजी।

मरजाना—

(भरे गले से) मुझे बुरे बुरे खयाल आ रहे हैं, मेरी आंख फड़क रही है।

भरी—

अल्लाह रहम करेगा।

मरजाना—

जरूर कुछ बुरी बात होगी।

भरी—

(उसके कधे को प्यार से थपथपाते हुए) हौसला करो...अल्लाह...

मरजाना—

(ओढ़नी चेहरे से हटाकर आंसू पोछते हुए) तुम नहीं जानती भरी आज सुबह मैंने उसे जाते समय नाराज़ कर दिया था। वह मेरे साथ थोड़ी सी आज़ादी लेना चाहता था पर मैंने......

(फिर मुंह ढांप लेती है।)

भरी—

हम लड़कियां हैं, हम अपनी इच्छा से हँस नहीं सकतीं, बोल नहीं सकतीं, हिल जुल नहीं सकतीं। जी मे चाहे घुट घुट कर मर जाएँ। मुझे ही देख लो। मां चाहती है कि यहां से खुलासी हो तो ताया के लड़के के घर बैठा दे और उसकी निसबत मुझे सादिक ही मंजूर है।

मरजाना—

(आसू पोंछ कर) पर वह तो तुम्हे मारता है।

भरी—

मारता तो है, पर मैं मार खा लेती हूँ।

मरजाना—

तो फिर तू आई क्यो ?

भरी—

मैं कब आती थी। ताया को देख कर उसके सिर पर तो खून सवार हो गया, वह गंडासा उठा लाया और ताया मुझे ले आए।

मरजाना—

तो अब चली जा!

भरी—

यही तो दुख है, जाऊं कहां ? वहां तो खाने को सूखी रोटी भी नहीं। कल टकुआ ले चढ़ आया। मैंने कहा, मुझे ले जाना चाहता है तो चार पैसे तो कमा कर ला। सिर्फ़ मारेगा ही या खाने को भी देगा। कहने लगा—कोशिश तो करता हूं, कुछ न बने तो

क्या करूं ? मैंने कहा—तो फिर मुझे ले जाकर क्या करेगा ? सारी दुनिया मजूरी करती है, तू क्यो नहीं करता। पेट तो खाने को मांगेगा। मार से वह न मरेगा।—सच कहती हूं मरजाना इस पर वह बोला नहीं चुप चाप चला गया। असल मे आठ जमातें पढ़ कर टोकरी ढोते उसे शर्म आती है। बाप मर गया और सिखाया किसी ने कुछ है नहीं।

मरजाना—

तुम्हारी अम्मा तो कह रही थीं कि उसने भी टकुआ तुम पर चलाया।

भरी—

टकुआ चलाता तो मैं यहा बैठी रहती। वह तो योंही मौसी ने शोर मचा दिया।

[दोनों कुछ क्षण आग सेंकती हैं। मरजाना फिर उद्विग्न हो उठती है।]

मरजाना—

मेरे दिल पर तो सुबह ही से भारी बोझ है भरी ! जाते जाते कहने लगा—मरजी, यदि मैं आज ही मर जाऊं तो फिर !

(सहसा फिर आंखें छलछला आती हैं।)

भरी—

(उसके कंधे पर प्यार से हाथ फेर कर) तुम तो पागल हो, अल्लाह मेहर करेगा।

मरजाना—

मुझे उसी समय से न जाने कैसे कैसे ख़याल आ रहे हैं। दिल

धक धक कर रहा है, और जी जैसे सुबह ही से रोने रोने को हो रहा है। आज रहीम ख़ैर आफ़ियत से आजाए तो पीर गुलाब शाह की क़ब्र पर सवा रुपया चढ़ाऊं।

[दरवाजा खुलता है। आगे आगे चौधरी फिर अचेत से रहीम को उठाए दो आदमी, फिर बेगां और फिर उसके पीछे अन्य व्यक्ति प्रवेश करते हैं, मरजाना घबरा कर रहीम की ओर बढ़ती है।]

बेगां—

अन्दर जाओ, देखती नहीं हो, ग़ैर आदमी आ रहे हैं।

[दोनों लड़कियां भाग कर रसोई में चली जाती हैं। एक व्यक्ति आंगन में पड़ी चारपाई ठीक करता है। बेगां भाग कर अन्दर से पुरानी सी दुलाई लाने जाती है।]

मरजाना—

(जब बेगां, अन्दर से दुलाई लाकर गुजरती है) अम्मा!

बेगां—

(चारपाई पर दुलाई बिछाती हुई) घबराओ नहीं। अल्लाह ने बचा लिया है। सिर्फ़ भारी चोटें आई हैं।

[दुलाई बिछा देती है। अचेतप्राय रहीम को उस पर लिटा दिया जाता है। चौधरी उसके हाथ पाव आदि ठीक तरह रखता है और बेगा से कहता है—]

चौधरी—

म-जी की मां। अन्दर से लिहाफ़ लाकर इस पर डाल दे, सर्दी बड़ी है।

(बेगा कोठड़ी में जाती है।)

चौधरी—

(मुड़ कर भीड़ में देखते हुए) अरे कोई मुख़्तार दीनदार को बुलाने गया है या नहीं।

एक व्यक्ति—

ताफ़ी डाक्टर को बुलाने गया है।

चौधरी—

अरे डाक्टर क्या खाकर मुख़्तार का मुकाबला करेगा। मुख़्तार टूटी हड्डियों की किरचों तक को जोड़ दे। जा भाग कर बुला ला उसे।

(वह व्यक्ति भाग जाता है)

चौधरी—

(भीड़ में देख कर) और फिर वहां जाने कितने जख्मी पड़े हैं। डाक्टर किस किस को देखेगा।

बेगा—

(रहीम पर झुकते हुए) रहीम, बेटा रहीम !

चौधरी—

तुम उसे आराम से पड़ा रहने दो बीबी। जाकर मीठे तेल का प्रबंध करो, आग जला दो, पानी गर्म कर दो, शायद डाक्टर ही आ जाए। (मुड़ कर) अरे यार कोई भाग कर कुछ गर्म गर्म दूध तो लाओ ! इसे कुछ होश तो आए। (एक युवक से) अरे जलाल जा तो ज़रा भाग कर गूजरों के यहां !

(जलाल भाग कर जाता है।)

रहीम—

(कराह कर) चाची*......मरजानी !

बेगा—

बेटा !

चौधरी—

मैं कहता हूं मरजी की अम्मा, तुम मीठा तेल लाओ, मुख़्तार अभी आ रहा होगा, और इस अँगीठी में और कोयले डाल कर इसे यहां रख दो ! आग रसोई में जरा तेज कर दो ! ज़रूरत ही पड़ जाती कुछ चीज गर्म करने की।

(बेगां अँगीठी उठा कर जाती है।)

—(दीर्घ निश्वास छोड़ कर) कुछ मकान गिरा है, सारी की सारी छत्त आ रही। यह ठेकेदार सब हराम की कमाई खाते हैं। पीर बख़तयार शाह की ख़ानकाह को बने, जाने सौ साल से ज्यादा हो गए हैं, पर मजाल है जो एक ईंट भी हिली हो। यहा चीज़ बनती पीछे है मुरम्मत पहले शुरू हो जाती है। जाने कितने आदमी दब गए ? (सहसा मुड़ कर) क्यो भाई बाकियो का क्या हाल है ?

दो व्यक्ति (जो रहीम को उठाए लाए थे)—

हमें क्या मालूम। हम तो इसे उठा उठा कर ले आए। अभी

---

* चची।

तो मलबा हटाया जा रहा था। सादिक और मंगू भी तो थे ?

चौधरी—

कौन सादिक ? लोहार !

वे दोनों—

नहीं, रज्जी का दामाद !

चौधरी—

लेकिन वह.........

वे दोनों—

आज ही काम पर गया था।

[दरवाजा खुलता है, कुछ और आदमी हांपते हुए दाखिल होते हैं।]

चौधरी—

क्यो ?

एक आगंतुक—

सादिक़ मर गया।

[रसोई में से किसी के धड़ाम से गिरने की आवाज आती है। साथ ही मरजाना चीखती है।]

मरजाना—

भरी को ग़श आ गया है अम्मा !

चौधरी—

अरे कोई भाग कर कुछ दूध ले आओ !

(जलाल दाखिल होता है।)

जलाल—

गूजर कहते हैं—दूध कहां है, दूध तो सब देवनगर चला जाता है बच्चो तक के लिये नहीं रहता।

दिसम्बर ४०

———

विवाह के दिन

(सामाजिक व्यंग)

पात्र

परसराम	एक महत्वाकांक्षी शिक्षित गायक, उम्र सिर्फ २१ वर्ष
बलवन्त	उसका मित्र
विजय	उसका छोटा भाई
पिता	परसराम का पिता

स्थान

होशियारपुर में मध्यम श्रेणी का एक मकान

[पर्दा इसी मकान के एक दालान में उठता है ।

दालान में एक बड़े, कदाचित जहेज़ में आये हुए, सन्दूक के अतिरिक्त और कुछ नहीं । दीवारों पर पुरानी तर्ज़ के एक-दो धार्मिकचित्र लगे हैं, जिनमें लक्ष्मी की तस्वीर साफ दिखाई देती है । इसके नीचे एक अलमारी है, जिसके पट इस समय बन्द हैं ।

अलमारी के दोनों ओर खूंटिया हैं, जिनमें से एक पर कागज़ का सेहरा टँगा है और दूसरी पर कागज़ का तीर कमान। (दोनों चीजें कदाचित नेगियों द्वारा लाई गई हैं ।)

सामने की दीवार के दायें कोने में खिड़की है, जिसकी कुण्डी पुरानी होकर बेकार हो चुकी है । और रौगन जिसका काला पड़ गया है ।

बायीं दीवार में एक दरवाज़ा है, जो सामान की कोठरी में खुलता है । दालान का शेष सब सामान भी शायद उसी कोठरी में पहुँच चुका है, क्योंकि वहाँ इस समय केवल एक दरी बिछी है, जिसकी सिलवटें साफ़ दिखाई दे रही हैं ।

नीचे कहीं आगन से स्त्रियों के गाने की आवाज़ आ रही है, जिस पर कभी-कभी छा जानेवाली, बाहर मुहल्ले में बजनेवाले बाजों की ध्वनि भी कमरे में आ जाती है।]

[पर्दा उठने के एक दो क्षण बाद बायीं ओर सामान की कोठरी से विजय निकलता है, दायीं ओर से मा दाखिल होती है—

दोनों घबराये हुए हैं।

विजय के पाव नंगे हैं और वह पायजामा और कमीज़ पहने है।

मा नाक में बड़ी, सम्हाले न सम्हलनेवाली शिकारपुरी नत्थ, सिर पर सुर्ख़ सालू, गले में रेशमी कमीज़, और कमर में झिलमिलाती सुत्थनी पहने है।

दालान के मध्य दोनो एक क्षण के लिए रुकते हैं।]

मा—

किधर है ?

विजय—

कोठरी में !

मा—

क्या बात है ?

विजय—

रोए जा रहे हैं, बस !

[मा जल्दी-जल्दी कोठरी में चली जाती है। बाहर के दरवाजे से पिता दाखिल होते हैं।

सिर पर पगड़ी, गोल भरा चेहरा, श्याम वर्ण, घनी-

बड़ी श्वेत मूँछें, कद से मोटा शरीर—कमीज़, शलवार में आवृत]

पिता—

क्या बात है ?

विजय—

(कोठरी की ओर इशारा करके) अन्दर हैं।

[पिता जल्दी-जल्दी कोठरी की ओर जाते हैं। फिर मुड़ते हैं और विजय से कहते हैं]

—ज़रा बलवन्त को भेजो !

[कोठरी में चले जाते हैं। *विजय भागता-सा बाहर* की ओर जाता है।

कुछ क्षण कमरे में खामोशी रहती है, सिर्फ नीचे से स्त्रियों के गाने की आवाज़ आती है। और बाजे बाहर ज़ोर-ज़ोर से बज उठते हैं और बाहर शायद हवा का ज़ोर होने से खिड़की के पट खटखटाते हैं, और वह खुलने खुलने को होती है।

फिर बलवन्त जल्दी-जल्दी प्रवेश करता है। केवल पतलून और कमीज़ पहने—और जल्दी जल्दी कोठरी में चला जाता है।

तब विजय दाखिल होता है।

कोठरी के दरवाज़े से कान लगाकर सुनता है और फिर अचानक पलटकर व्यस्त होता हुआ फर्श पर बिछी

दरी की सिलवटें ठीक करने लग जाता है।

कोठरी से मा-बाप परसराम को दोनों हाथों से पकड़े आते हैं, पीछे-पीछे बलवन्त है।

परसराम की आखें रोने से सुर्ख हैं और वह इन्हें कन्धों से पोंछता आ रहा है।]

पिता—

परसराम, पागल न बनो!

मा—

बच्चा, मैं तो लाज से मरी जा रही हूँ। घर में बहू आई है और तुम इधर कोठरी मे बच्चों की भाँति सिसक रहे हो।

पिता—

आखिर कुछ बताओ भी कि बात क्या है? मुझे बाहर सौ काम करने हैं, इतने अतिथि आए हुए हैं, बाजेवाले आये हुए हैं, नट आये हुए हैं और फिर सामान अभी लारी में ही है और रस्मे ....

(परसराम ज़ोर से रो पड़ता है।)

पिता—

(अपनी पत्नी और बलवन्त से) तुम इससे ज़रा पूछो। मैं बाहर जाता हूं (बेज़ारी से सिर हिलाते हैं) पागल!...

मा—

परसराम!

बलवन्त—

परसराम !

(परसराम सिर उठाता है, गिरेबान से आंखें पोंछता है।)

मा—

बैठो !

[परसराम वहीं सन्दूक के कोने पर बैठ जाता है। अचानक खिड़की का पट ज़ोर से खुलता है। सेहरा सरसराता है, और तीर-कमान डोलता है।]

बलवन्त—

विजय !

(विजय बढ़कर खिड़की बन्द कर देता है।)

मा—

(परसराम से, आर्द्र स्वर में) कहो न क्या बात है ?

परसराम—

तुम लोगो ने मेरा जीवन नष्ट कर दिया है।

मा—

क्यों बच्चा, आज तो ख़ुशी का दिन है, घर में लक्ष्मी आई है, तू कैसी बातें करता है ?

बलवन्त—

वाह, जीवन नष्ट कर दिया है, मियाँ, क्वाँरों का जीवन भी कोई जीवन है, न घड़े पानी, न चूल्हे आग, पत्नी......

(स्वयं ही खोखला कहकहा लगाता है।)

परसराम—

मैं ऐसी पत्नी नहीं चाहता।

[मा और बलवन्त एकटक उसकी ओर देखते हैं।
विजय भी दरी की सिलवटें ठीक करना छोड़ देता है।]

परसराम—

कह दिया, मैं ऐसी पत्नी नहीं चाहता, तुम लोगों ने मेरे साथ धोखा किया है। मेरे गले मे एक फूहड़, कुरूप, अल्हड़ लड़की बाँध दी है। मेरी जिन्दगी बर्बाद कर दी है। मैं बम्बई चला जाऊँगा, उसका मुँह तक न देखूँगा।

मा—

बेटा! (आखों में आसू छलछला आते हैं।)

परसराम—

(उसकी ओर देखता है।) तुमने इसी तरह रो-रोकर मेरे रास्ते में काँटे बोए हैं। मै तुम्हारे इन आँसुओ को क्या करूँ, कहाँ तक देखूँ?

मा—

(दुपट्टे से आसू पोंछते हुए) बेटा, कैसी बच्चो की-सी बाते कर रहे हो। नीचे आँगन मे बिरादरी की स्त्रियाँ इकट्ठी हो रही हैं। अभी कई रस्मे होनी हैं और तुम इधर रो रहे हो, कहो तो सही, उसमे दोष क्या है?

परसराम—

तुम यह बताओ, उसमे गुण कौन-सा है ?

मा—

सीधी-साधी भोली-भाली लड़की है, खाना पकाना जानती है, सीना-पिरोना जानती है, तुमने उसके हाथ का किरोशिये का काम नहीं देखा। मुहल्ले की लड़कियाँ प्रशंसा करते नहीं थकतीं।

परसराम—

क्या पत्नी केवल खाना बनाने, सीने-पिरोने, किरोशिये का काम करने के लिए लाई जाती है ?

[दोनों निरुत्तर उसके मुँह की ओर देखते हैं, आखिर बलवन्त की दृष्टि विजय पर पड़ती है जो दत्तचित्त होकर सब बातें सुन रहा है और दरी की सिलवटें निकालना भूल गया है। बलवन्त उसे इशारा करता है कि वह जाए और मा परसराम से पूछती है:]

मा—

आख़िर तुम चाहते क्या हो ?

परसराम—

मैं चाहता हूँ, तुम मुझे छोड दो, मुझे जी भरकर रो लेने दो। मेरे जीवन का महल मेरे देखते-देखते धराशायी हो जाए, मैं उसके विध्वंस पर क्षण भर रोऊँ भी नहीं !

मा—

राम-राम बच्चा, कैसी बातें करते हो ?

[परसराम पीछे को लेटकर दीवार के साथ पीठ लगा देता है। बाहर से नायन की मीठी, बारीक, सानुनासिक आवाज़ आती है :]

—बहूरानी, नीचे सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं, मुँहदिखाई अभी होनी है।

मा—

(भर्राई हुई आवाज़ में बलवन्त से) बच्चा, तुम इसे समझाओ ! मैं अभी आई।

(दुपट्टे से आंखें पोंछती हुई चली जाती है।)

बलवन्त—

आख़िर तुम पर यह क्या पागलपन सवार हो गया है ?

परसराम—

पागलपन सवार हो गया है; मैं रोऊँ भी न अपनी तबाही पर ?

बलवन्त—

लेकिन अब रोने से क्या लाभ ? ये आँसू पहले बहते तो कुछ बात भी थी।

परसराम—

तुम नहीं जानते, मैं आरम्भ में कितना चिल्लाया, पर इन लोगों ने मेरी एक पेश न जाने दी। मैं बम्बई जाना चाहता था। तुम स्वयं जानते हो कि सिनेमा में मेरे लिए कितना है। स्कोप* एक दो साल में कहीं से कहीं पहुँच सकता हूँ, लेकिन इन लोगो ने मेरी समस्त आकांक्षाओं का गला घोंट दिया। मा ने रोकर, आँसू बहा

*Scope=क्षेत्र।

कर, पिताजी ने कोस कर, डाँट कर; चचा ने अपनी नाक का वास्ता दिला कर और न जाने कैसी बातें करके मुझे शादी करने पर विवश कर दिया।

बलवन्त—

लेकिन...

परसराम—

और फिर जबरदस्ती देखो, मुझे पत्नी को देखने तक की आज्ञा न दी गई। मैंने कहा—मैं लड़की को देखूँगा। सबने कानों पर हाथ धर लिये। मा बहू को देखने गईं और आकर बहू की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर दिए (मुँह बनाकर नक़ल उतारते हुए) 'बहू क्या है, देवी है, दिन-रात काम करती है, सीना-पिरोना खूब जानती है, खाना बनाने में निपुण है, सुबह उठकर नियमित रूप से संध्या-वंदना में मन लगाती है'। मैं पूछता—वह है कैसी? मा कहतीं—कैसी होगी, अच्छी है। इस 'अच्छी है' पर मेरा माथा ठनका था। मैं फिर पूछता—गाना-वाना जानती है? मा कहतीं—सुनते हैं जानती है, हारमोनियम वे दहेज़ में दे रहे हैं। अब मेरे सामने तबला लेकर तो बैठी नहीं...

(बलवन्त क़हक़हा लगाता है)

परसराम—

तुम हँसते हो, मैं जी भर कर रो लेना चाहता हूँ। तुम देखो, इन लोगों की मूर्खता के कारण मेरा सारा जीवन नष्ट हो रहा है। इन लोगों को कौन समझाए कि पत्नी का काम केवल सीना-पिरोना

और दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह काम करना नहीं। उसके लिये पति की संगिनी होना आवश्यक है। दोनों की रुचियाँ एक होनी चाहिएँ, नहीं जीवन दूभर होकर रह जाता है—मैं भैरवी अलापूँगा, वह कपड़ों पर धप-धप करेगी; मैं गीत गाऊँगा, वह वर्तनों की छनाछन से नाक में दम कर देगी, मैं अपने लिखे संभाषण सुनाना चाहूँगा, वह 'अभी सफ़ाई करनी है,' 'अभी कपड़े सीने हैं' 'अभी ..

(बलवन्त कहकहा लगाता है।)

परसराम—

मैं इस दाम्पत्य-जीवन की कल्पना करता हूँ तो मेरी रूह फ़ना हो जाती है। एक फूहड़, अशिक्षित और कुरूप लड़की से किस प्रकार एक कलाकार का निर्वाह हो सकता है ?

बलवन्त—

किन्तु कौन जाने, उसमे ये गुण किसी न किसी हद तक मौजूद हो।

परसराम—

खाक होंगे, मैंने अभी उसकी एक झलक देखी है, उसमें और सब कुछ हो सकता है, ये गुण नहीं हो सकते। उसके काले हाथ पर चेचक का निशान मैंने साफ़ देखा—फूहड़, गँवार, चेचक-रू—मैं बम्बई भाग जाऊँगा।

(पिता दाखिल होते हैं।)

पिता—

तुम अभी तक यहीं बैठे हो। उधर अभी कंगना होना है। उठो, पहले सब रस्में पूरी कर लो, फिर चाहे जो करना, जी चाहे, जितना रो लेना। आँगन मे सब बिरादरी की स्त्रियाँ आई हुई हैं; इस तरह हमारी खिल्ली तो न उड़ाओ।

परसराम—

मैं......

पिता—

मैंने सब कुछ सुन लिया है, तुम सिर्फ़ पागल हो। इस समय चलो, मैं अभी फिर तुमसे बातें करूँगा।

[हाथ थामकर परसराम को खींचते हुए ले जाते हैं। बलवन्त, चुपचाप संदूक का सहारा लिये खड़ा सोचता है। कुछ क्षण बाद फिर पिता प्रवेश करते हैं।]

पिता—

मैं कहता हूं, तुम ज़रा शान्ति से पूछना कि बहू क्या वास्तव में ही इतनी बुरी है। और उसे समझाना। देखो यह वंश की इज्ज़त का प्रश्न है। मैंने तुम्हें सदैव अपने बेटे की तरह समझा है। तुम्हारे पिता हरभगवान मेरे घनिष्ट मित्र थे।

[बलवन्त के कंधे को प्यार से थपथपाकर चले जाते हैं और 'मैं भरसक प्रयत्न करूंगा'—बलवन्त के ये शब्द नहीं सुनते और 'मैं शान्ति को भेजता हूँ' यह कहते हुए दरवाजे से निकल जाते हैं।]

बलवन्त—

(संदूक पर बैठ कर शून्य में देखता हुआ) कहता था, इसका विवाह न करो, यह अभी विवाह के योग्य नहीं। कच्चे घड़े को पानी मे छोड़ दोगे तो वह पार न हो सकेगा, लेकिन कोई नहीं माना... ...

[शान्ति तेजी से प्रवेश करती है।

भाई के विवाह के कारण अच्छे भड़कीले कपड़ों में आवृत्त है; भरी जवानी, भरा गोरा पर गम्भीर मुख। दो ही वर्ष पहले उसका विवाह हुआ है, किन्तु वह सफल है वा असफल, यह बात उसकी आकृति से जान लेना कठिन है।]

शान्ति—

कहो क्या बात है ? मुझे जल्दी जाना है !

बलवन्त—

(धीरे से) देखी, कैसी है भाभी ?

शान्ति—

(मुस्कराकर) अच्छी है।

बलवन्त—

(आगे बढ़कर और भी धीरे से) अच्छी कैसी है ?

शान्ति—

(हँसकर) तुम्हें अभी से ईर्षा क्यों होने लगी, तुम्हारे लिए कम सुन्दर पत्नी न चुनी जाएगी।

बलवन्त—

(उसकी हँसी में योग न देता हुआ) यह बात नहीं, तुम्हारे भाई ने तुम्हारी इस नयी भाभी को पसन्द नहीं किया।

शान्ति—

लेकिन वह तो ऐसी बुरी नहीं।

बलवन्त—

तभी तो पूछता हूँ कि कैसी है ?

शान्ति—

रंग ज़रा साँवला है, पर नक़्श नयन तीखे हैं, सुन्दर हैं, बड़ी बड़ी आँखें........

बलवन्त—

पढ़ी लिखी है।

शान्ति—

ख़याल तो ऐसा ही है।

बलवन्त—

और चेचक...

शान्ति—

(तनिक चिढ़कर) क्या मतलब है तुम्हारा ?

बलवंत—

चेहरे पर चेचक के दाग़ तो नहीं।

शान्ति—

बिल्कुल नहीं, मक्खन की तरह मुलायम है चेहरा मेरी भाभी का। तुम लोगों को जाने क्या भ्रम हो गया है ?

बलवन्त—

(हँसकर) मुझे नहीं, भ्रम तुम्हारे भाई को हुआ है। लेकिन अब एक बात करो, किसी न किसी तरह उसे भाभी को दिखाने का प्रबन्ध कर दो।

शान्ति—

(आश्चर्य से) आज ही, पागल हो गये हो !

बलवन्त—

मैं कहता हूँ, तुम लोगों को प्रबन्ध करना होगा, नहीं वह भाग जाएगा।

शान्ति—

(एक पग पीछे हटकर) भाग जाएगा।

[खट से खिड़की के पट खुल जाते हैं, सेहरा हिलता है और तीर-कमान डोलता है।]

बलवन्त—

(खिड़की बन्द करता हुआ) हाँ भाग जाएगा। न जाने उसे कैसे भ्रम हो गया है कि उसकी पत्नी अत्यन्त कुरूप है और वह कहता है—इन लोगों ने मेरा जीवन नष्ट कर दिया है। तुम्हें आज ही वह को उसे दिखाना होगा।

शान्ति—

मैं कोशिश करूँगी।

[सोचती हुई, पहले धीरे धीरे और फिर तेज तेज चली जाती है। पिता प्रवेश करते हैं।]

पिता—

तुमने पूछा, लड़कियाँ क्या कहती हैं ?

बलवन्त—

रंग तनिक साँवला है, लेकिन नक्श-नयन सुन्दर हैं, बड़ी-बडी आँखें..... .

पिता—

फिर तुम्हीं कहो यह पागलपन नहीं तो क्या है ? (हाथ उसके कंधों पर रखते हुए, धीरे से) बात कहने की नहीं, लेकिन परसराम की मा कितनी सुन्दर है, तो क्या हमारा जीवन सुख से नहीं बीता ?

बलवन्त—

आन्तरिक सुन्दरता होनी चाहिए, बाह्य सौन्दर्य्य हुआ तो क्या ?

पिता—

मुझे कहने से क्या लाभ, उसे समझाओ तो बात है ।

बलवन्त—

उसे कहीं भ्रम हो गया है, मेरे विचार में आप आज उसे अपनी पत्नी को देख लेने दें, सब कुछ ठीक हो जाएगा ।

पिता—

तुम स्वयं समझदार हो, यह कैसे हो सकता है ?

बलवन्त—

अब अवसर आ पड़ा है तो सब कुछ करना ही पड़ेगा । वह भावुक और हठी आदमी है । भावुकता की धुन में न जाने क्या कर

बैठे ? अभी कह रहा था—मैं बम्बई भाग जाऊँगा और आप जानते हैं, वह भाग सकता है।

पिता—

(भृकुटी तन जाती है। हाथ नीचे आ जाते हैं।) मेरी नाक काटकर, जाने से पहले मैं उसकी टाँगें न तोड़ दूँगा।

बलवन्त—

लेकिन टाँगें तोड़ने से नाक तो न बचेगी।

[पिता भारी कदम रखते हुए और भारी उपेक्षा से एक-दो बार 'मूर्ख' और 'पागल' कहते हुए कमरे में घूमते हैं।]

बलवन्त—

आप मेरी बात मानें, किसी न किसी तरह उसे आज ही बहू को देख लेने दें। निराशातिरेक समाप्त हो जाय, वह कुछ शान्त हो तो उसे समझाने का प्रयत्न करें।

पिता—

(रुककर) तुम...तुम उसकी मा से कहो।

बलवन्त—

मैंने शान्ति से कहा है...

पिता—

तुमने पूछा, कुछ पढ़ी-लिखी भी है ?

बलवन्त—

बहिन कहती थी—खासी पढ़ी-लिखी है।

पिता—

(लगभग गर्ज कर) फिर यह गधापन नहीं तो क्या है ? खुशी के दिन ऐसा रोना रुलाना !......मूर्ख....अहमक़......

बलवन्त—

उसे भ्रम...

(बाहर से नाई की आवाज़ आती है)

आवाज़—

यजमान किधर हैं आप ? उधर सौ काम......

पिता—

(ऊँचे स्वर में) चलो मैं आया। (बेज़ारी से सिर हिलाते हैं) मैं किधर-किधर हो सकता हूँ ? (धीरे से) तुम शान्ति से या उसकी मा से कहकर कुछ प्रबन्ध करो !

[तेज़ी से जाते हैं।

बलवन्त सन्दूक से उठता है, एक-दो बार कमरे का चक्कर लगाता है, फिर तेज़ी से बाहर चला जाता है।

हवा के ज़ोर से खिड़की का पट खुल जाता है, सेहरा सरसराता है और तीर-कमान डोलता है, बाहर से बाजों का शोर कान में आता है।

मा और शान्ति शीरीनी+ की एक परात थामे दाखिल होती हैं। साथ-साथ बलवन्त है।

सब चलते चलते बातें करते हैं।]

+ सीरनी (एक तरह की पंजाबी मिठाई)

वलवन्त—

मैं कहता हूँ, प्रबन्ध तो आपको करना ही होगा, उसके स्वभाव को आप नहीं जानते।

मा—

लेकिन आज बच्चा !......आज.........

वलवन्त—

बल्कि अभी......

(हवा के ज़ोर से शीरीनी उड़ती है।)

मा—

खिड़की...

(वलवन्त बढ़कर खिड़की बन्द करता है।)

शान्ति—

मैं कहती हूँ मा, दिखा क्यों न दो।

मा—

अभी कँगना समाप्त हुआ है, अभी मुँहदिखाई की रस्म होनी है। बाहर की स्त्रियाँ बहू के देखने के लिए आतुर हैं, फिर बहू ने अभी आराम तक नहीं किया, पानी तक नहीं पिया।

वलवन्त—

(खिड़की बंद करके आता हुआ) पानी वह सारी उम्र पीती रहेगी और आराम भी वह आयुपर्यन्त करती रहेगी। यदि आज आप ने परसराम को शान्त न किया तो आज का आराम उसे जीवन भर

काँटे की भाँति खटकता रहेगा और इससे हज़ार गुना पानी उसे आँखों के रास्ते निकालना पड़ेगा।

[सब कोठड़ी में दाखिल हो जाते हैं और कुछ क्षण बाद परात रखकर पुनः बातें करते हुए वापस आते हैं।]

मा—

मैं तो लाज से मरी जा रही हूँ... महरी......

शान्ति—

महरी को मैं भेज दूँगी। वह मुझसे कह रही थी कि उसकी गाय उसके अतिरिक्त किसी और को पास नहीं फटकने देती। मैं उसे भेज दूँगी। नगर में समधियाने का यही तो सुख.........

मा—

बहू......

शान्ति—

मैं उसे स्वयं इस कमरे में छोड़ जाऊँगी।

मा—

(काँपते स्वर में) मेरा दिल धक धक कर रहा है, मेरी आँखें फड़क रही हैं, कुछ अनिष्ट होने को है। यह सब ठीक नहीं...मा लक्ष्मी...

[खिड़की का पट फिर खुल जाता है, बलवन्त बढ़कर ओर से पट बन्द कर देता है। सब चले जाते हैं।

कुछ क्षण कमरे में निस्तब्धता रहती है जिस में खूँटी पर टँगा हुआ तीरकमान धीरे-धीरे डोलता है और उसके

पास ही एक छपकली शायद उस पर बैठी हुई मक्खी पर झपटने के लिए बढ़ती है।

परसराम घबराया हुआ दाखिल होता है।]

परसराम—

(उन्मादियों की भाँति अपने-आप ऊँचे-ऊँचे बातें करता हुआ) बस हो चुका शादी का यह तमाशा। मैं बहुत देर तक इसे सहन न कर सकूँगा। मा-बाप को एक बहू चाहिए थी, उन्हे मिल गई, काली, गोरी, सुघड़-फूहड़ उन्हे मुबारक हो। मैं जैसी पत्नी चाहता था, वैसी वह नहीं।

[कोट उतारकर ज़ोर से एक कोने में फेंकता है और कलगी वाली पगड़ी उतारकर उसी ज़ोर से दूसरे कोने में फेंकता है।]

—क्या मैंने उसके हाथ नहीं देखे, क्या उसका रंग मुझ से अच्छा है और वह उसके हाथ का दाग़ क्या साफ़ 'माता*' का मालूम न होता था? क्या मैंने उसकी आवाज़ नहीं सुनी, ससुराल से विदा होते समय उसने जैसी रुदन-रागिनी निकाली थी, उसे सुन कर ही मैं समझ गया था कि इस गले से और चाहे कुछ निकले, रसीली चीज़ एक भी नहीं निकल सकती।

[सिर को दोनो हाथों से थामे कमरे में घूमता है। खिड़की के पट खुल जाते हैं। और हवा के ज़ोर से सेहरा उड़ जाने को और तीर-कमान गिर जाने को हो जाता है और छपकली डरकर भाग जाती है।

---

* पंजाब में चेचक को माता भी कहते हैं।

परसराम जोर से खिड़की बन्द करता है, इतने जोर से कि छत तक काँप जाती है। ढूँढकर एक लकड़ी सी उसमें अड़ा देता है, और बेजारी से सिर हिलाता है।]

—सब ज़िन्दगी बरबाद कर दी।

[जाकर सन्दूक पर लेट जाता है और लटकते हुए पाँवों को जोर-जोर से सदूक के साथ मारता है।

शान्ति दरवाजा खोलकर चुपके से बहू को अन्दर ढकेल देती है और दरवाजा बन्द कर देती है। सिमटी सहमी बहू घूँघट निकाले वहीं दीवार के साथ खड़ी हो जाती है।

परसराम फिर उचककर उठता है और पागलों की तरह घूमने लगता है—बहू को दीवार के साथ लगी खड़ी देखकर ठिठकता है।]

परसराम—

तुम......

[खांसता है, उसकी ओर देखता है, फिर खाँसता है। और फिर जाकर संदूक पर बैठ जाता है।

बहू खड़ी है, बस खड़ी है—और भी सिमटी और भी सिकुड़ी।

परसराम फिर उठता है, उसके समीप जाता है, कमीज़ की आस्तीन से मुँह पोंछता है। फिर उसके और समीप जाता है।]

—वहाँ चलकर बैठो !

(संदूक की ओर इशारा करता है, वहू नहीं हिलती]

—वहाँ चलकर बैठो !

[और कंधे से थामकर पत्नी को, संदूक के पास जैसे जबरदस्ती ले जाता है।

वहू संदूक के साथ लगी चुपचाप खड़ी हो जाती है।

परसराम उसे बरबस बैठा देता है। उसके साँवले हाथों को देखता है और परेशानी से कमरे का एक चक्कर लगाता है।

फिर आकर घूँघट उठाना चाहता है, वहू घूँघट पकड़ लेती है।

परसराम अलमारी खोलकर एक रद्दी-सी पुस्तक निकालता है (उसके इस प्रयास में बहुत से रद्दी कागज़ और किताबें फर्श पर बिखर जाती हैं) पुस्तक को खोल कर वहू के घूँघट के आगे रखता है।]

—तुम्हें पढ़ना आता है ?

(घूँघट थामे वहू चुप बैठी रहती है।)

—देखो मैं कैसे फर-फर पढ़ता हूँ, तुम पढ़ ही नहीं सकतीं। (कहकहा लगाता है, फिर लय से) तुम पढ़ ही नहीं सकतीं। (सहसा गम्भीर होकर) देखो, साफ़ लिखा है—(पढता है)—आम खा, चुप रह, सेब बहुत अच्छा फल है, आज हम गुल्ली-डण्डा खेलेंगे।

(फिर कहकहा लगाता है, किताब को फेंक देता है।)

और उन्मादियो की भाँति—

—और तुम्हे गाना आता है ?

(उत्तर के लिए रुकता है, वहू चुप ।)

—फिर तुम्हारी हमारी कैसे निभ सकती है ? कैसे निभ सकती है तुम्हारी हमारी ?

(लय से गाता है)

निभ सकती है कैसे तुम्हारी हमारी ?

हमारी तुम्हारी, तुम्हारी हमारी !

कैसे कैसे कैसे कैसे ?

[वहू डर जाती है, उठना चाहती है, वह फिर बैठा देता है ।]

—ठहरो मैं तुम्हे दरबारी कानड़ा सुनाता हू ।

(गाता है :)

धन जोवन का मान न करिये ।

(बहू का हाथ पकड़ता है और गाता है ।)

धन जोवन का मान...

[वहू हाथ छुड़ाती है और भाग जाती है, परसराम कमरे में घूमता है, सिर हिलाता है और गाता है—

धन जोबन......

शान्ति घबराई हुई दाखिल होती है ।]

शान्ति—

परसराम, परसरा

(परसराम उसकी ठोड़ी ऊपर उठाता है और गाता है—)

'धन जोबन का मान न करिये'

शान्ति—

(विस्फारित आँखों से उसकी ओर देखती हुई चीखती है ।) **परसराम, परसराम . !**

(परसराम गाए जाता है ।)

शान्ति—

(चीख की हद को पहुँची हुई आवाज से) **परसराम, तुम्हे क्या हो गया है ?**

[चीखती हुई भाग जाती है, और दूसरे क्षण वहू को जैसे घसीटती हुई लाती है और कमरे में लाकर उसका घूँघट उतार देती है ।]

शान्ति—

(उसी आवाज में) **यह देखो तुम्हारी वहू, यह असुन्दर नहीं कुरूप नहीं, यह शिक्षित है, यह गा सकती है। तुम्हें भ्रम हो गय है, तुमने शायद महरी की लड़की को देख लिया है। आँखे खोल कर देखो, देखो यह रो रही है।**

[परसराम आँखें फाड़कर वहू को देखता है, और फिर इतने जोर से कहकहा लगाकर और दरवाजा खोल कर वाहर भाग जाता है कि छत काँप जाती है। खिड़की की कुंडी में फँसी हुई लकड़ी गिर पड़ती है। पट खुल जाते है, हवा के तेज झोंके से सेहरा जमीन पर आ रहता

है। तीर-कमान एक ख़ास कोण पर टँगा रह जाता है। और अलमारी से गिरे हुए कागज फड़फड़ाते हैं।

शान्ति आँखें फाड़े, खड़ी रह जाती है, हवा से उसके सिर का पल्ला उड़ जाता है, बाल बिखर जाते हैं। परसराम के पीछे शून्य में देखती हुई वह आश्चर्य और क्रोध से सिर्फ इतना कहती है—]

—पागल ! छिः !

पर्दा

जुलाई १६४०

लक्ष्मी का स्वागत

(एक ट्रेजेडी)

पात्र

रौशन	एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र	उसका मित्र
भाषी	उसका छोटा भाई
पिता	रौशन का बाप
मा	रौशन की माता
अरुण	रौशन का बीमार बच्चा
डाक्टर	

स्थान—

जिला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान।

समय--

नौ दस बजे सुबह।

[दालान में सामने की दीवार से मेज़ लगी है, जिस के इस ओर एक ुरानी कुर्सी पड़ी है; मेज़ पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं।

दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का ार्दा लगा है, बायें कोने में एक दरवाज़ा है, जो सीढ़ियों में खुलता है।

दाईं दीवार में एक दरवाज़ा है जो उस कमरे में खुलता है, जहाँ इस ाक़ रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तस्वीरें मेखों से जड़ी हुई हैं। छत ार कागज़ का एक पुराना फानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर ूसलाधार वर्षा हो रही है। हवा की साँय-साँय और वर्षा के थपेड़े ुनाई देते हैं।

कुछ क्षण बाद खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है। फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है और पर्दा हटाकर बाहर देखता है। बीमार के कमरे से रौशनलाल दाखिल होता है।]

रौशन—

(दरवाजे को धीरे से बन्द करके।) डाक्टर अभी नहीं आया

सुरेन्द्र—

नहीं।

रौशन—

वर्षा हो रही है ?

सुरेन्द्र—

मूसलाधार ! जल थल एक हो रहे हैं।

रौशन—

शायद ओले पड़ रहे हैं।

सुरेन्द्र—

हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।

रौशन—

भाषी पहुँच गया होगा ?

सुरेन्द्र—

हाँ, पहुँच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले ! नदियाँ बह रही होंगी बाजारों में !

रौशन—

लेकिन अब तक आ जाना चाहिये था उन्हें। (स्वयं बढ़कर

खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है—घुटे घुटे स्वर में) अरुण की तबीयत गिर रही है।

सुरेन्द्र—

(चुप)

रौशन—

(उसी आवाज में) उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है; उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है, उसकी आँखें खुली हैं, पर वह कुछ कह नहीं सकता, बेहोश-सा, असहाय-सा, चुपचाप बिटर-बिटर तक रहा है । आँखें लाल और शरीर गर्म। सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है। (दीर्घ निश्वास छोड़ता है।) क्या होने को है सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र—

हौसला करो। अभी डाक्टर आ जायगा। देखो, दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी है।

(दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की साँय साँय।)

रौशन—

नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र—

(सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

[रौशन बढकर खिड़की में देखता है, फिर वापस आ जाता है।]

रौशन—

सामने के मकान का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है।

[बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फ़ानूस को देख रहा है।]

रौशन—

(घूमते हुए जैसे अपने आप) यह मामूली बुखार नहीं, यह गले की तकलीफ़ साधारण नहीं, (सहसा सुरेन्द्र के पास रुककर) मेरा तो दिल डर रहा है सुरेन्द्र, कहीं अपनी मा की तरह अरुण भी तो मुझे धोखा न दे जायगा ? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है ?

(हवा की सॉय-सॉय और वर्षा के थपेड़े ।)

—यह वर्षा, यह आँधी, यह मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है । प्रकृति का यह भयानक खेल, मौत की ये आवाजें......

[बिजली जोर से कड़क उठती है। बादल गरजते हैं और मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठते हैं।]

रसोई से मा की आवाज़—

रौशी दरवाजा खोल आओ। देखो शायद डाक्टर आया है।

(रौशन सुरेन्द्र की ओर देखता है।)

सुरेन्द्र—

मैं जाता हूँ अभी।

[तेज़ी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता

है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भाषी प्रवेश करते हैं। भाषी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है।]

डाक्टर—

क्या हाल है बच्चे का ?

[बरसाती उतारकर खूंटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है।]

रौशन—

आपको भाषी ने बताया होगा डाक्टर साहिब। मेरा तो जैसे हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और साँस कुछ कष्ट से आने लगा किन्तु आज तो वह बेहोश-सा पड़ा, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने का भरसक प्रयत्न कर रहा है।

डाक्टर—

चलो, देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज आती है। मा तेजी से प्रवेश करती है।]

मा—

भाषी ! भाषी !

(बीमार के कमरे से भाषी आता है।)

मा—

देखो भाषी बाहर कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है। (आंखों में चमक आ जाती है) मेरा तो ख़याल है, वही लोग आये हैं। मैंने

रसोई की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिए और बरसा-तियाँ पहने......

भाषी—

वही कौन ?

मा—

वही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी ......

[ज़ोर-ज़ोर से कुण्डी खटखटाने की निरन्तर आवाज़। भाषी भागकर जाता है, मा खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है, सुरेन्द्र तेज़ी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र—

भाषी कहाँ है ?

मा—

बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[फिर तेज़ी से वापस चला जाता है। मा एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झांकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में टहलती है। भाषी दाखिल होता है।]

मा—

कौन हैं ?

रौशन—

अब बताइये डाक्टर साहिब !

डाक्टर—

(अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन—

बहुत नाजुक है ?

डाक्टर—

हाँ !

रौशन—

कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर—

परमात्मा के घर कुछ कमी नहीं, लेकिन आपने बहुत देर कर दी। खुनाक (डिपथीरिया*) में तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन—

हमें मालूम ही नहीं हुआ डाक्टर साहिब, कल शाम को इसे बुखार हो आया, गले में भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाज़ार में हैं—उन्होंने गले में आयोडीन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और फीवर-मिक्स्चर बना दिया, दो खुराकें दीं, इसकी हालत तो पहले से भी खराब

---

* डिपथीरिया—गले का संक्रामक रोग जिसमें सांस बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

हो गई। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आप के पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भाषी को भेजा, फिर भी आप न मिले। और फिर यह झड़ी लग गई—ओले, आँधी और झक्कड़! जैसे प्रलय के बन्धन ढीले हो गए हों।

[बाहर हवा की साँय-साँय सुनाई देती है। डाक्टर सिर नीचा किए खड़ा है, रौशन उत्सुक नजरों से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज़ के एक कोने पर बैठा छत की ओर जोर-जोर से हिलते फ़ानूस को देख रहा है।]

डाक्टर—

(सिर उठाता है) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाषी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान ले आया था और मेरा ख़याल ठीक निकला। भाषी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुसख़ा लिख देता हूँ, यहीं बाजार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक में दवाई की दो-चार बूँदें, और एक घंटे में मुझे सूचित करना। यदि एक घंटे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और कर जाऊँगा। कोई दूसरा इलाज भी तो नहीं!

रौशन—

डाक्टर साहिब, (आवाज़ भर आती है।)

डाक्टर—

घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद......... .

रौशन—

मैं अपनी तरफ़ से कोई कसर न उठा रखूँगा । सुरेन्द्र, देखो तुम मेरे पास रहना, जाना नहीं, यह घर इस बच्चे के लिए वीराना है। ये लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग मे इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते हैं........

सुरेन्द्र—

क्या कहते हो रौशन.........

डाक्टर—

रौशनलाल . . ....

रौशन—

आप नहीं जानते डाक्टर साहिब ! ये सब लोग हृदय-हीन हैं, आपको मालूम नहीं। इधर मै अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके आया था, उधर ये दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे !

सुरेन्द्र—

यह तो दुनिया का व्यवहार है भाई !

रौशन—

दुनिया का व्यवहार—इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर ! नही जानता कि जो मर जाती है, वह भी किसी लड़की होती है, किसी के लाड प्यार में पली होती है, फिर.........(डाक्टर को जाते देखकर) आप जा रहे हैं डाक्टर साहिब (भाबी से) देखो भाभी जल्दी आना, बस, जैसे यहीं खड़े हो।

(डाक्टर और भाषी चले जाते हैं ।)

रौशन—

सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड़कर चला जायगा ! मैं तो उसे देखकर सरला का ग़म भूल चुका था, लेकिन अब अब .

(हाथों से चेहरा छिपा लेता है ।)

सुरेन्द्र—

(उसे धकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मुर्दों मे जान आ जाए, मरणासन्न उठ कर खड़े हो जायें ।

रौशन—

(भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा । उसका कोई भरोसा नहीं—क्रूर, कठिन और निर्मम ! उसका काम सते हुओं को और सताना है, जले हुओ को और जलाना है ।

सुरेन्द्र—

दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भाषी अभी क्यो नहीं आया ?

[उसे दरवाज़े के अन्दर धकेल कर मुड़ता है । दायीं—ओर के दरवाज़े से मा दाखिल होती है ।]

मा—

किधर चले ?

सुरेन्द्र—

ज़रा भाभी को देखने जा रहा था।

मा—

क्या हाल है अरुणा का ?

सुरेन्द्र—

उसकी हालत खराब हो रही है।

मा—

हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया है। ये डाक्टर जो न करें थोड़ा है। बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी। अच्छी-भली हकीम की दवा हो रही थी। आराम आ रहा था। जिगर का बुखार ही तो था, दो-दो वर्ष भी रहता है, पर यह डाक्टरों को लाये बिना न माना। और उन्होंने दे दिया दिक़ का फ़तवा, हमने तो भाई इसीलिए कुछ कहना-सुनना ही छोड़ दिया है। आख़िर मैंने भी तो पाँच पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र—

डिपथीरिया !

मा—

क्या ?.. ....

सुरेन्द्र—

बड़ी खतरनाक बीमारी है मा जी ! अच्छा भला आदमी चन्द घंटों के अन्दर खत्म हो जाता है।

मा—

राम राम ! तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला । उसे ज़रा ज्वर हो गया है, छाती जम गई होगी, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं ।

सुरेन्द्र—

नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है आप से अधिक वह कैसे प्रिय होगा !

(चलने को उद्यत होता है ।)

मा—

सुनो !

(सुरेन्द्र रुक जाता है ।)

मा—

मैं तुमसे एक बात करने आई थी, तुम उसके मित्र हो न, उसे समझा सकते हो ।

सुरेन्द्र—

कहिए ?

मा—

आज वे फिर आये हैं ।

सुरेन्द्र—

वे कौन ?

मा—

सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हार कर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र—

मा जी...

मा—

तुम जानते हो बच्चा, दुनिया जहान का यह कायदा है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप ही को देख लो, अभी दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफा भी न निचोड़ा था कि नकोदरवालो ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद विवाह भी हो गया और अब तो सुनते हैं, बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र—

मा जी, रामप्रताप और रोशन में कुछ अन्तर है।

माता—

यही ना, कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है, और यह पढ़-लिख कर अवज्ञा करना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं,

फिर देर हो गई तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ-सौ बातें बनायेंगे, सौ-सौ लाञ्छन लगायेंगे और फिर कौन ऐसा क्वाँरा है ..

सुरेन्द्र—

मा जी, तुम्हारा रोशन बिन-ब्याहा न रहेगा, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ।

मा—

यह ठीक है बेटा, पर अब ये भले आदमी मिलते हैं। घर अच्छा है, लडकी अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है। और सब से बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े अच्छे हैं। लड़की की बडी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीक़े वाली है कि क्या कहूँ। बोलती है तो फूल तोलती हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है वह स्वयं कैसे न अच्छी होगी ?

सुरेन्द्र—

मा जी, अरुण की तबीयत बहुत ख़राब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

मा—

बेटा, अब ये भी तो इतनी दूर से आये हैं—इस आँधी और तूफान में! कैसे इन्हे निराश लौटा दें ?

सुरेन्द्र—

तो आख़िर आप मुझ से क्या चाहती हैं ?

मा—

तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि ज़रा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों, उन्हें बता दे, इतने में मैं लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र—

मुझ से यह नहीं हो सकता मा जी! बच्चे की हालत ठीक नहीं। बल्कि नाज़ुक है। आप नहीं जानतीं, वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान उसी में केन्द्रित हो गया है। और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नहीं, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ?

[बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है। रौशन दाख़िल होता है—बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटी सी।]

रौशन—

सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो? परमात्मा के लिए जाओ, जल्दी जाओ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भापी अभी आया क्यों नहीं? अरुण तो......

सीढ़ियों से—

मैं आ गया भाई साहब!

[भापी दवाई की शीशी लिए दाख़िल होता है। सुरेन्द्र और भापी बीमार के कमरे में जाते हैं। मा

रौशन के समीप आती है ।]

मा—

क्या बात है, घबराये हुए क्यों हो ?

रौशन—

मा, उसे डिपथीरिया हो गया है ।

मा—

मुझे सुरेन्द्र ने बताया । (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल-मिलाकर .....

रौशन—

क्या कह रही हो ? तुम्हे स्वयं अगर किसी बात का पता नहीं तो दूसरों को तो कुछ करने दो ।

मा—

चलो, मैं चलकर देखती हूँ ।

(बढती है ।)

रौशन—

(रास्ता रोकता है) नहीं, तुम मत जाओ । उसे बेहद कष्ट है; साँस उसे मुश्किल से आती है, उसका दम उखड़ रहा है; तुम कोई घुट्टी-वुट्टी की बात करोगी ।

(जाना चाहता है ।)

मा—

सुनो !

मा—

वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबीयत बहुत ख़राब है।

पिता—

(खँखार कर) एक दिन में ही इतनी क्या ख़राब हो गई ? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाज़ी है।

जोर से आवाज देता है—

रौशी,

(खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज !)

फिर आवाज देता है—

रौशी,

[रौशन दरवाजा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है, आँखें रुआसी सीं और निगाहों में करुणा।]

रौशन—

(अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें आप, क्या शोर मचा रहे हैं !

पिता—

इधर आओ !

रौशन—

मेरे पास समय नहीं !

पिता—

(चीख़कर) समय नहीं ?

रौशन—

धीरे बोलें आप !

पिता—

मैं कहता हूँ, वे इतनी दूर से आये हैं, तुम्हे देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे ज़रा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन—

मैं नहीं जा सकता !

पिता—

नहीं जा सकता ?

रौशन—

नहीं जा सकता !

पिता—

तो मैं शगुन ले रहा हूँ ! इस वर्षा, आँधी ,और तूफ़ान में उन्हें अपने घर से निराश नहीं लौटा सकता। घर आई लक्ष्मी का निरादर नहीं कर सकता।

(रोने की तरह रौशन हँसता है।)

रौशन—

हां, आप लक्ष्मी का स्वागत कीजिए।

(खट से दरवाजा बन्द कर लेता है।]

पिता—

(रौशन की मा से) इस एक महीने में हमने कितनों को इनकार

मा—

रौशी, रौशी !

(दरवाज़ा अन्दर से बन्द है ।)

मा—

रौशी, रौशी !

रौशन—

(कमरे के अन्दर से भर्राये हुए स्वर में) क्या बात है ?

मा—

दरवाज़ा खोलो ?

रौशन—

तुम लक्ष्मी का स्वागत कर आओ !

मा—

रौशी—

रौशन—

चुप !

मा—

रौशी !

[सीढ़ियों से रौशन के पिता के हुक्का पीने और खँखारने की आवाज़]

पिता—

(सीढ़ियों से ही) रौशन की मा, बधाई हो !

(पिता का प्रवेश । मा उनकी ओर मुड़ती है ।)

पिता—

बधाई हो, मैंने शगुन ले लिया ।

[कमरे का दरवाज़ा खुलता है, मृत बालक का शव लिये रौशन दाखल होता है ।]

रौशन—

हाँ, नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ !

पिता—

हैं ? मर गया !

[हाथ से हुक्का गिर पड़ता है और मुँह खुला रह जाता है ।]

मा—

मेरा लाल !

(चीख़ मार कर सिर थामे धम से बैठ जाती है ।)

सुरेन्द्र—

मा जी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

पर्दा

हंस मई १६३८.

समझौता

(प्रहसन)

पात्र

डॉक्टर वर्मा

डॉक्टर कपूर

डॉक्टर बृजलाल

श्रीमती वर्मा

मि० परतूल चन्द

मुंडू, बलचरण

पहला दृश्य

स्थान—

डा० वर्मा की सर्जरी।

समय—

सुबह आठ बजे।

[एक मुस्ततील (आयताकार) कमरा है जिसमें सामने की दीवार में दायीं ओर एक दरवाज़ा है, जो सर्जरी को जाता है, उस पर इस समय मूँगिया रंग के कपड़े का पर्दा लगा हुआ है।

उसी दरवाजे के साथ बायीं तरफ़ को हटकर दीवार के साथ एक कुर्सी लगी है जिसके सामने बड़ी मेज़ पड़ी है। मेज पर दायीं ओर एक रैक में कुछ पुस्तकें चुनी रखी हैं, उसके साथ ही किनारे पर दन्त-चिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाली कुछ पत्रिकाएँ एक दूसरी के ऊपर करीने से चुनी हुई हैं। मेज के बायें किनारे पर दीवार के साथ एक 'स्टेशनरी कैबीनेट' है, जिसमें कागज़-पत्र आदि रखे हुए हैं।

बायीं दीवार में एक दरवाजा है जो बाहर बाज़ार की ओर बरामदे में खुलता है, इस पर भी वैसा ही पर्दा पड़ा हुआ है।

दीवारों पर दाँतों से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न प्रकार के चित्र और मॉटो टँगे हैं। सामने की दीवार पर तीन मॉटो साफ दिखाई देते हैं।

"मुँह शरीर का दरवाज़ा है, उसकी रक्षा करो।"

"रोगी दाँत क़ब्र खोदने वाले फावड़े हैं।"

"७५ प्रतिशत बीमारियां रोगी दाँतों से फैलती हैं।"

डॉक्टर वर्मा चुपचाप कुर्सी पर बैठे हैं। मेज़ पर कुहनियाँ टेक कर और हथेली पर ठोढ़ी रखे सोच रहे हैं। आयु कोई बत्तीस वर्ष, किन्तु बालों में अभी से सफेदी आ गई है। एक पुराना सूट सफाई और सावधानी के साथ पहने हुए हैं।]

(बाहर घंटी बजती है।)

[डॉक्टर वर्मा रैक में से जल्दी से एक मोटी सी पुस्तक सामने रख-कर उसे योंही मध्य से खोल लेते हैं और मेज़ पर कुहनी टेक कर बड़ी तन्मयता से उसके अध्ययन में निमग्न हो जाते हैं।]

(घंटी फिर बजती है।)

डा० वर्मा—

(दृष्टि पूर्ववत् पुस्तक पर जमाए हुए) आ जाइये।

[बायीं ओर दरवाजे का पर्दा उठा कर डा० कपूर प्रवेश करते हैं।]

डा० कपूर—

हैलो वर्मा !

(डा० वर्मा चौंक कर पुस्तक से नजर उठाते हैं।)

डा० वर्मा—

ओ . . . .

(खड़े होकर हाथ बढ़ाते हैं।)

—अरे तुम हो कपूर ! मैंने समझा कोई पेशेन्ट *(patient) है।

(दोनों हाथ मिलाते हैं।)

डा० कपूर—

मोटा पेशेन्ट, एँ !

(हाथ हिलाते हुए कहकहा लगाते हैं।)

डा० वर्मा—

साधारण रोगियों को घंटी बजाने की तमीज़ कहाँ ? वे तो धँसाधस अन्दर चले आते हैं। वेटिङ्ग रूम में न होऊँ तो अन्दर सर्जरी तक बढ़ आते हैं। मैंने समझा था कि कोई मोटा और सभ्य पेशेन्ट है।

डा० कपूर—

मोटा और सभ्य !...........

(हँसता है।)

डा० वर्मा—

(कुर्सी की ओर संकेत करके) बैठो, क्या हालचाल हैं आजकल ?

[स्वयं भी अपनी जगह पर बैठ जाता है और पुस्तक को परे सरका देता है]

---

*पेशेन्ट=रोगी

डा० वर्मा—

(मेज से कुंजियों का गुच्छा उठाकर अंगुली में घुमाते हुए) किसी तरह बीत रही है।

डा० वर्मा—

यहाँ तो भाई यदि यही हाल रहा तो......मैं सोच रहा हूँ कि इस सब साज़-सामान को उठाने के लिए भी दो सौ रुपये दरकार हैं।......और फिर दो महीने का किराया मालिक-मकान का सिर पर हो चुका है।

डा० कपूर—

दो महीने का ?

(कुंजियों के गुच्छे को मेज़ पर रख कर टाँगें हिलाता है।)

डा० वर्मा—

हाँ-हाँ, दो महीने का—पूरे एक सौ बीस रुपये। मैं कहता हूँ, यार तुम बड़े अच्छे रहे। अभी दो वर्ष तुम्हें प्रेक्टिस आरम्भ किए नहीं हुए कि चल निकले हो और फिर कालेज के बाद दो चार वर्ष घूम फिर कर जो आनन्द उड़ाए वे घाते में। यहाँ तो जब से डिग्री ली है, पड़े उसकी जान को रो रहे हैं।

(उठकर कमरे में घूमता है।)

डा० कपूर—

तो स्थान क्यों नहीं बदल लेते ?

डा० वर्मा—

(रुक कर) पहले इस ख़याल में रहे कि शुरू शुरू में तो समस्त लाहौर के रोगी इधर फट पड़ने से रहे, और फिर ऐसा प्रतीत हुआ कि बस अब चल ही निकलेंगे, पर इधर जब गर्मियाँ शुरू हुई हैं.........

डा० कपूर—

किन्तु उधर तो गर्मियों मे सब वैसे ही चलता है।

डा० वर्मा—

सरक्यूलर रोड की बात करते हो। भाई भाग्य के बली हो कि पहले ही अच्छी जगह डेरा जम गया। नित्य नया मरीज़ पड़ता है। स्टेशन से सीधा रास्ता, बाहर से जो लोग लाहौर के निपुण डाक्टरों से चिकित्सा कराने आते हैं, वे तुम्हारे यहाँ ही तो फँसते हैं। उधर की क्या बात है ? काम ख़राब हो जाए तो चिन्ता नहीं, बिगड़ जाए तो चिन्ता नहीं, जब रोगी को पता चलता है तो वह लाहौर से बीसों मील दूर होता है। यहाँ तो ऐसी मनहूस जगह से पाला पड़ा है कि ज़रा भी काम ख़राब हो जाए तो दस दस दिन तक मरीज़ जान खा जाता है। मानों फ़ीस देकर उसने सदैव के लिए हमें ख़रीद लिया हो।

(बेज़ारी से सिर हिला कर फिर घूमता है।)

डा० कपूर—

(जैसे विनम्र गर्व के साथ) भाई दूर के ही ढोल सुहाने प्रतीत

होते हैं। रोगी तो वहाँ काफ़ी आते हैं, इसमें संदेह नहीं, पर अधिकांश ऐसे, जिन्हें तुम अपने वेटिंङ रूम में भी पग न धरने दो। तुम्हारे इधर तो मोटी आसामियाँ फँसती हैं।

डा० वर्मा—

(रुक कर) मोटी (विषाद से मुस्कराता है।) उनके लिए क्या माल † उठ गई है।

डा० कपूर—

लेकिन सेक्रेटेरियेट ⊛ तो है।

डा० वर्मा—

उन में जो किसी योग्य हैं, वे शिमले चले जाते हैं।

डा० कपूर—

और कॉलेज।

डा० वर्मा—

(जैसे निराशा की सीमा को पहुँच कर) उनमे छुट्टियाँ हो जाती हैं।

[जाकर अपने स्थान पर बैठ जाता है। कुछ क्षण के लिए खामोशी, जिसमें डा० वर्मा हथेली पर मस्तक रख कर सोचते हैं और डा० कपूर बेखबरी में टाँगे हिलाते हैं और मेज़ से कुंजियों का गुच्छा उठाकर उंगली में घुमाते हैं]

---

† माल रोड। ⊛ सरकारी दफ्तर।

डा० कपूर—

(जैसे सहसा कोई बात सूझ गई हो) मेरा ख़याल है आजकल तो कालेज खुल चुके हैं।

डा० वर्मा—

हाँ खुल चुके हैं, पर बात वास्तव में यह है कि कालेजों में प्रति-वर्ष नये छात्र आते हैं, चाहिए तो यह कि हर साल दाख़िले के आरम्भ ही में खूब प्रापेगंडा† किया जाए ताकि नये छात्र भी नाम से परिचित हो जाएँ, पर प्रचार के लिये चाहिये रुपया और रुपया (जेबों से ख़ाली हाथ निकालता है और हँसता है।) यहाँ नदारद है।

[हॉकर बाहर बरामदे में से ही पर्दा उठा कर समा-चार पत्र फेंक जाता है। कौच पर बैठे-बैठे ही डा० कपूर उसे उठा लेते हैं।]

डा० वर्मा—

वैसे दुकान मेरी ढब पर स्थित है। सच पूछो तो छः कालेज इसके समीप हैं। यदि कहीं ठीक ढंग से इन में प्रचार हो जाए, तो वारे न्यारे हो जाएँ, पर होता है यह, कि जब तक कोई लड़का बार-बार इधर से गुज़रने पर मेरे नाम का परिचय पाता है कि उसकी शिक्षा समाप्त हो जाती है और यह फ़र्स्ट ईयर के फ़ूल*—इन्हें तो इतनी भी समझ नहीं कि निस्बत रोड और अनार-

---

† प्रापेगण्डा=प्रचार।

* कॉलेज के पहले वर्ष में जो छात्र जाते हैं उन्हें ऊँची श्रेणियों के छात्र व्यङ्ग से Fool अर्थात् मूर्ख कहते हैं।

कली मे क्या अन्तर है, बस जिन लोगों के नाम प्रान्त मे प्रसिद्ध हैं उनके ही यहाँ वे जाते हैं फिर चाहे वे उल्टे उस्तरे से ही उन्हें मूँड डालें। यहाँ तो भाई चाहिए प्रापेगंडा—निरन्तर प्रापेगंडा।

[डा० कपूर समाचार पत्र पढने लगते हैं, पर अन्तिम शब्द सुनकर उसे परे कर देते हैं।]

डा० कपूर—

ये सब तो भाई दिल को समझाने की बातें हैं, नहीं हम कौन-सा प्रापेगंडा करते हैं। तुम तो फिर भी दाँतों के सर्वश्रेष्ठ डाक्टर होने का, अमेरिकन रीति से दाँत लगाने का, दाँतों की चिकित्सा मे निपुणता रखने का विज्ञापन दे सकते हो, पर हमे तो सिरे से विज्ञापन देने की आज्ञा ही नहीं और फिर ले-दे कर चार ही तो दाँतो की बीमारियाँ हैं, यहाँ इतनी, कि गिनती ही नहीं, करना भी चाहे तो किस-किस का प्रचार करे।

(पत्र पर दृष्टि जमा देता है।)

डा० वर्मा—

क्यों तुम अपने आई-स्पेशेलिस्ट* होने का प्रचार नहीं करते ? मैंने स्वयं तुम्हारे नौकर को विज्ञापन बाँटते देखा है।

डा० कपूर—

(समाचार-पत्र परे हटा कर) वह (ज़रा हँसता है।) वह तो मैंने अभी ऐनकों का काम आरम्भ किया है न, इसीलिए उसकी कुछ

* आई-स्पेशेलिस्ट—आँखों के विशेषज्ञ चिकित्सक।

आवश्यकता हुई है, तुम तो जानते हो हम डाक्टरो को प्रचार करने का सर्वथा निषेध है।

डा० वर्मा—

पत्र के दो पृष्ठ इधर भी दो।

[कपूर समाचार-पत्र के बीच दो पृष्ठ निकाल कर देता है और डा० वर्मा बड़ी तन्मयता से उनके अध्ययन में विलीन हो जाते हैं।]

डा० कपूर—

(पत्र पढना छोड़कर) मैं कहता हूँ, दस वर्ष तक जो ऐश किए वे मृत्यु-पर्यन्त स्मरण रहेंगे, कालेज के बाद भी कुछ ऐसा बुरा नहीं रहा, पर अब तो जब से यह प्रैक्टिस का बन्धन पड़ा है, जीवन ही दूभर हो गया है।

डा० वर्मा—

(समाचार-पत्र से दृष्टि उठा कर) मैं तो अब भी कालेज का समां बाँध दूँ, पैसा चाहिए।

(दोनों फिर तन्मय होकर अख़बार पढते हैं)

डा० वर्मा—

(पत्र पढ़ना छोड़ कर) बात यह है कि तुम्हारे यहाँ नित्य नये रोगी आते हैं और फिर आँख, नाक, कान, मंदाग्नि, अतिसार, कुष्ठ, ज्वर, यक्ष्मा और न जाने किस-किस की चिकित्सा करने वाली एक ही एम० बी० बी० एस की डिग्री तुम्हारे पास है, यहाँ

तो बस कोरे डेंटिस्ट* हैं और दाँतों का डाक्टर, तुम जानो किसी को पेट-दर्द की भी दवाई नहीं दे सकता।

(फिर समाचार-पत्र पर दृष्टि जमा देता है।)

डा० कपूर—

कम्बख्त कोई ऐसी औषधि भी नहीं की एक दाँत उखाड़ते समय दूसरे पर लगा दी जाए, तो उसे भी उखाड़ने की नौबत आ जाए।

[कहकहा लगाता है और फिर उठ कर नपे तुले पाँवों से कमरे में घूमता हुआ अखबार पढ़ता है। डाक्टर वर्मा जैसे एक एक खबर को कंठस्थ कर रहे हैं।]

डा० कपूर—

(समाचार-पत्र बन्द करके और मेज़ के पास आकर) मैं कहता हूँ वर्मा, यदि ऐसी दवाई तुम्हारे पास होती, तो फिर तुम्हारे सारे रोगी अपने सब दाँत उखड़वाए बिना, तुमसे छुटकारा न पा सकते।

[फिर हँसता है, डाक्टर वर्मा इस हँसी में योग नहीं देते, उनकी दृष्टि जैसे अखबार के पृष्ठों को छेद कर मेज़ को छेदने का प्रयास कर रही है।]

डा० कपूर—

(फिर रुक कर) अच्छा यह चैम्बरलेन साहब फिर रोम जा रहे हैं, अब किस चैकोस्लोवाकिया की बारी है ?

---

*डेंटिस्ट=दाँतों के डॉक्टर।

[डा० वर्मा कोई जवाब नहीं देते, डा० कपूर वहीं खड़े-खड़े समाचार-पत्र में तन्मय हो जाते हैं।]

डा० वर्मा—

(अचानक उठ कर और कपूर के पास जाकर, उसके कंधे पर हाथ रखते हुए) देखो कपूर, तुम मेरे मित्र हो।

(डा० कपूर समाचार पत्र बन्द कर देते हैं।)

—हम दोनों बचपन मे इकट्ठे खेले, कूदे और पढ़े हैं और तुमसे मेरा कुछ पर्दा भी नही।

(डा० कपूर उत्सुक दृष्टि से वर्मा की ओर देखते हैं।)

—इसीलिए मैं यह बात तुमसे कहने का साहस कर रहा हूँ। देखो यदि कुछ अच्छी न लगे तो कुछ ख़याल न करना।

डा० कपूर—

कहो-कहो !

डा० वर्मा—

बात यह है कि आय का जो हाल है उसका पता तुम्हे लग ही चुका है। अब छः वर्ष इसी जगह बीत गए हैं, कुछ लोग मुझे जान भी गए हैं। ये दो-चार गर्मियो के महीने ठीक नहीं बीतते, सो इनके डर से मैं अब यह दुकान छोड़ना नहीं चाहता। इस सम्बन्ध में मैं तुमसे कुछ सहायता की आशा रखता हूँ।

डा० कपूर—

मैं प्रस्तुत हूँ, कहो मैं क्या कर सकता हूँ।

डा० वर्मा—

देखो तुम्हारे पास विभिन्न व्याधियो मे ग्रसित कई तरह के रोगी आते हैं। यह बिल्कुल सम्भव है कि उनमे से कुछ न कुछ को दाँतो का भी कष्ट हो, तुम उनसे मेरे नाम की सिफ़ारिश कर सकते हो।

डा० कपूर—

मैं अवश्य ऐसा करूँगा।

डा० वर्मा—

ठहरो।

[बढ कर मेज के दराज से कार्ड निकाल कर डा० कपूर की ओर बढ़ाते हुए :]

—बात यह है कि यह कार्ड तुम रक्खो, जिस किसी से मेरे नाम की सिफ़ारिश करो उसे, अपना हस्ताक्षर करके, एक कार्ड दे दो। मैं उससे जो फ़ीस लूँगा, उसमें से .....देखो कारोबार आख़िर कारोबार है ....२५ प्रतिशत कमीशन तुम्हे दे दूँगा।

डा० कपूर—

यह सब व्यर्थ है, कमीशन वमीशन तुम रहने दो, वैसे मैं भरसक तुम्हारे लिए प्रयत्न करूँगा, यदि किसी को आवश्यकता न भी हो तो भी उसे.... कम-से कम दाँत साफ करवाने की ज़रूरत अवश्य ही महसूस करवा दूँगा .. तुमसे यह तो सीख ही लिया है कि ७५ प्रतिशत रोग खराब दाँतो से फैलते हैं।

[दायीं ओर के एक मॉटो की ओर संकेत करता है और हँसता है।]

डा० वर्मा—

(उदास होकर) तो तुम भेज चुके।

डा० कपूर—

नहीं, मैं ज़रूर भेजूँगा, पर यह कमीशन का झगड़ा रहने दो।

डा० वर्मा—

(जैसे समझाते हुए) देखो भाई, यह तो कारोबार है, माना तुम इन छोटी-छोटी बातों की परवाह नहीं करते, घर से खाते-पीते सम्पन्न आदमी हो, रोगी भी तुम्हारे यहाँ खूब आते हैं और यह साधारण सी रकम तुम्हारे लिए कोई महत्त्व नहीं रखती, पर तुम्हारे मित्र के लिए तो रख सकती है, तुम्हे रुपये की इतनी आवश्यकता न सही.. ....

डा० कपूर—

तुम्हें किस कम्बख़्त ने कहा है कि मुझे रुपये की आवश्यकता नहीं। घर से खाता-पीता हूँ तो क्या ? मां-बाप ने शिक्षित बना दिया, गुण सिखा दिया, अब कमाओ और खाओ। रोगी अवश्य आते हैं, पर यहाँ सदैव दीवाला पटा रहता है। आय दो है, तो खर्च चार... ..पर अब इतना भी क्या गया-गुजरा हूँ कि तुम से कमीशन लूँगा।

डा० वर्मा—

भाई इसमें भावुकता की क्या बात है ? यह तो कारोबार है! (तनिक धीमे स्वर में) और फिर तुम कोई कमीशन के लिए थोड़े ही मेरे नाम की सिफ़ारिश करोगे, वह तो तुम मित्र के नाते......

डा० कपूर—

नहीं, नहीं, देखो मैं एक तरह से कमीशन ले सकता हूँ।

[डा० वर्मा उत्सुक नज़रों से डा० कपूर की ओर देखते हैं।]

डा० कपूर—

और वह यह कि तुम मेरे नाम की सिफ़ारिश करो, अब इसमें भावुकता के लिए कोई स्थान ही नहीं !

डा० वर्मा—

तुम्हारे नाम की ?

डा० कपूर—

हाँ, हाँ ! तुम्हारे यहाँ जो रोगी ऐनक लगवाना चाहे अथवा जिनकी नज़र कुछ कमज़ोर हो उनसे मेरा नाम ले सकते हो।

(जेब से कार्ड निकालता है।)

—और यह लो कार्ड, इस पर केवल रायल आप्टीशियन्ज़ (Royal opticians) ही लिखा है। मैं अपने नाम को इस काम के साथ नहीं लगाना चाहता, बस तुम इस कार्ड के पीछे हस्ताक्षर करके उस व्यक्ति को दे देना मैं तुम्हे २५ के बदले ३० प्रतिशत कमीशन दूँगा।

डा० वर्मा—

तुम तो उपहास करते हो।

डा० कपूर—

नहीं उपहास कैसा, मैं सच कहता हूँ। अरे इसमें लगता ही

क्या है, लाभ ही लाभ है, तुम्हें तो फिर भी कुछ परिश्रम करना पड़ता है, यहाँ तो जापान सलामत रहे. .

(कहक़हा लगाता है ।)

डा० वर्मा—

अच्छा, अच्छा पर कमीशन २५ ही रहने दो ।

डा० कपूर—

ठीक !

(समाचार पत्र मेज़ पर फेंक कर हाथ मिलाता है ।)

—तो मुझे अब चलना चाहिए, रोगियो के आने का समय हो गया होगा ।

डा० वर्मा—

तो आपस मे यह समझौता हो गया ।

डा० कपूर—

(चलता हुआ) हाँ, हाँ !

[डा० वर्मा उसके साथ-साथ दरवाज़े की ओर जाते हैं । दरवाज़े पर पहुँच कर डा० कपूर हाथ मिला कर चले जाते हैं ।]

डा० वर्मा—

(दरवाज़े में खड़े-खड़े सम्भवतया बाहर जाते हुए डा० कपूर को लक्ष्य करके ज़रा ऊँचे) तो ख़याल रखना ।

डा० कपूर—

(बाहर से) तुम भी !

डा० वर्मा—

क्यों नहीं, क्यों नहीं, परमात्मा ने चाहा तो, कल ही तुम्हें कुछ-न-कुछ कमीशन मेरे यहाँ भिजवाना पड़ेगा।

डा० कपूर—

(बाहर से) शायद तुम्हें मुझे भिजवाना पड़े।

(बाहर से कहकहे की आवाज़ आती है।)

पर्दा

दूसरा दृश्य

स्थान—

डा॰ वर्मा के घर का कमरा

समय—

रात के ६ बजे

[कमरा उसी तरह का है जिस तरह का पहले दृश्य में, (वास्तव में एक कमरे ही से दोनों दृश्यों का काम लिया जा सकता है) सामने का दरवाजा सीढियों में खुलता है और बाहर की ओर उस दरवाजे के साथ ही रसोई है, और यदि दरवाजा खुला हो तो दायीं ओर के रसोई घर से आने वाली रौशनी भी दृष्टिगोचर होती है। बायीं दीवार में स्टेज के किनारे का दरवाज़ा एक दूसरे कमरे को जाता है ।

कमरे से एक ही समय में खाने और सोने के कमरे का काम लिया गया है। सीढियों को जाने वाले दरवाजे के साथ ही बायीं ओर को सामने एक गोल मेज लगा है, जिसका मेजपोश मैला हो गया है, उसके इर्द-गिर्द चार-पाँच

कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। मेज के साथ बायीं ओर सामने की दीवार के कोने में एक पलग बिछा है, दूसरा पलंग दायीं ओर दीवार के साथ लगा है।

दायीं और बायीं दीवारों में खूँटियाँ लगी हैं, जिन पर कुछ कपड़े टँगे हुए हैं।

कमरे की छत पर लटकते हुए एक बिजली के अंडे की धीमी रौशनी से कमरा प्रकाशित है।

पर्दा उठते समय कमरा बिलकुल खाली है। सीढ़ियों से डा० वर्मा की आवाज़ आती है]—

—शीला, शीला !

श्रीमती वर्मा—

(बायी ओर के कमरे के अन्दर से) आई !

(सीढियों की ओर से डाक्टर वर्मा प्रवेश करते हैं ।)

डा० वर्मा—

(कमरे को खाली देख कर) इधर भी नहीं, आखिर किधर हो ? (तनिक क्रोध से) शीला, शीला !

श्रीमती वर्मा—

(उसी कमरे से) कह तो रही हूँ आई, आई !

डा० वर्मा—

आई कहाँ, जाने तुम रहती कहाँ हो ? कभी समय पर मैंने तुम्हें यहाँ न पाया, दिन भर का थका-माँदा दुकान से आता हूँ, पर तुम्हारा.............

श्रीमती वर्मा—

(उसी कमरे से) मैं कहती हूँ आते ही यह शोर क्या मचा दिया ? तीन-तीन संदेश तो दिन भर में मैंने भेजे, क्षण भर के लिए आप से आया न गया, रास्ता देखते-देखते आँखे पक गईं।

[स्वेटर बुनती हुई दरवाज़े को पाँव से ठेल कर प्रवेश करती है।]

—अब आए बड़े समय पर आने वाले,

डा० वर्मा—

(कोट उतारते हुए व्यंग से) मेरा रास्ता देखते-देखते आँखें पक गईं, मैं ग़रीब तो वह क्लर्क भी नहीं, जिसकी पत्नी कम-से-कम वेतन पाने के दिन तो उसकी प्रतीक्षा करती है।

श्रीमती वर्मा—

(क्रोध से) तो क्या मैं.........

डा० वर्मा—

नहीं-नहीं, आँखें तो तुम्हारी ज़रूर ही पक गई होंगी, पर आज यह कृपा क्यों ?

(मुस्कराते हैं।)

श्रीमती वर्मा—

दिन में तीन वार लाला का आदमी फिर गया है, मालूम है, आज धमकी दे गया है कि रुपये न मिले तो सौदा देना बन्द कर दिया जायगा।

(कोट ले जाकर खूँटी पर टाँगती है।)

डा० वर्मा—

लाहौल विलाकुव्वत, मैंने समझा था कि आज तुमने स्वयं अपने हाथों से कोई सुस्वादु चीज़ तैयार की है।

(हँसता है।)

श्रीमती वर्मा—

(वापस आते हुए) और धोबी तीन बार आ चुका है, उसकी भावज लड़ कर भाग गई है, उसे मनाने के लिए उसे जाना है। वह कहता है, मेरा हिसाब चुकता कर दो।

[डा० वर्मा केवल सीटी बजाते हैं और वास्केट उतार कर देते हैं।]

श्रीमती वर्मा—

(वास्केट लेते हुए) और मेहतरानी अलग जान खाए जाती है। (जाकर वास्केट खूँटी पर टाँगती है) मैं कहती हूँ कौन से बड़े पैसे हैं उसके, क्या इतने से भी रह गए ? और फिर दूधवाला...

डा० वर्मा—

(कानों पर हाथ रखते हुए) बस, बस कुछ कल के लिये भी उठा रक्खो।

श्रीमती वर्मा—

मैं कहती हूँ कि यदि यह मुई दूकान नहीं चलती तो इसे उठा दो, इससे तो भीख माँग लेना अच्छा।

डा॰ वर्मा—

देखो शीला, अब बस करो, मैं अब झगड़ा करने के मूड*
(mood) में बिलकुल नहीं, मैं आज बहुत प्रसन्न हूँ।

श्रीमती वर्मा—

(पास आकर कुछ नरमी से) कहिये कोई सेट† मिला ?

डा॰ वर्मा—

(कुर्सी पर बैठ कर बूट उतारते हुए) सेट ! तोबा करो, एक एक्स्ट्रेक्शन‡ (extraction) तक भी नहीं, पर स्कीम मैंने वह सोची है कि ऐक्स्ट्रेक्शनों और सेटों की भरमार हो जाए।

श्रीमती वर्मा—

(मुँह लटक जाता है) बस, बस रहने दो अपनी स्कीमे, सुन-सुन कर कान पक गए, पैसा तो कभी आता नहीं उल्टा पास से ही कुछ चला जाता है।

डा॰ वर्मा—

मैं कहता हूँ .....

श्रीमती वर्मा—

अब रहने भी दीजिए अपनी स्कीमे अपने पास ! (नौकर को आवाज देती है।) वे मुंडू, ला हाथ धुला इनके (डा॰ वर्मा से) अब आराम से बैठ कर खाना खाइए, और भी किसी को पेट की आग बुझानी है और फिर इतना काम सिर पर है।

---

*मूड=चित्त की अवस्था। †सेट=दाँतों का पूरा जबड़ा जो डेंटिस्ट बनाता है। ‡ऐक्स्ट्रेक्शन=दाँत उखाड़ना।

डा० वर्मा—

मै कहता हूँ वह स्कीम ही ऐसी है कि हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा आए।

(मुंड दरवाज़े से झाँकता है।)

मुंड—

क्या कहा बीबी जी।

श्रीमती वर्मा—

ऐ मुए सुना नही......मैं तो हार गई इन नौकरों के मारे...... कानों में जाने रुई डाल रखते हैं......अब बिटर बिटर क्या तक रहा है, जा पानी ला, इनके हाथ धुला।

डा० वर्मा—

(पॉवों से बूट मेज़ के नीचे करके जूता पहनते हुए) हाँ जल्दी ला पानी चल ! (पत्नी से) देखो वह स्कीम यह......

श्रीमती वर्मा—

पर मैं एक कौड़ी भी न दूँगी, कानी कौड़ी भी नहीं, मेरे पास अब कुछ नहीं रहा, इस........

डा० वर्मा—

(जैसे थक कर) ओ हो...... मैं कहता हूँ एक पैसा भी तुम्हे देना नहीं पड़ेगा (सहसा गम्भीर होकर और स्वर को कुछ करुण बना कर) वास्तव में शीला, मैंने तुम्हे बड़ा कष्ट दिया है, बार-बार अपनी व्यर्थ की स्कीमों के लिए तुम्हे परेशान करता रहा हूँ,

आभूषण भी कोई बनवा कर देने के बदले...(उठ कर और पत्नी के कंधे पर हाथ रख कर) किन्तु मैं स्वयं लज्जित हूँ शीला, आख़िर मैं करूँ क्या ? तुम देखती हो, कभी पान मैं नहीं चबाता, सिगरेट का व्यसन मुझे नहीं और अपव्ययता के नाम (पतलून की ओर संकेत करके) विवाह का ही सूट अब तक पहने चला जाता हूँ।

[नौकर पानी लाता है और डा० वर्मा हाथ धोकर तौलिए से पोंछते हैं।]

श्रीमती वर्मा—

(नौकर से) जाओ थाली परस लाओ, और देखो चीनी की छोटी प्याली में अदरक का अचार ले आना और एक चौथाई से आधा नींबू भी (डा० वर्मा से) मिरच तो आप खाएँगे नहीं (नौकर से) मिरच......मिरच न लाना।

(नौकर चला जाता है।)

डा० वर्मा—

मैं कह रहा था शीला कि मैं क्या करूँ, यह काम ही ऐसा है, दुकान चाहिए, नौकर चाहिए, टीम-टाम चाहिए, और फिर थोड़ी बहुत विज्ञापन-बाजी भी चाहिए, लोग यह देखते हैं कि डेंटल सर्जन है, और इसकी दुकान अनारकली के समीप है और बड़ी शान है, अन्दर से हाल कितना पतला है यह कोई नहीं जानता।

श्रीमती वर्मा—

(संवेदना के स्वर में) मैं तो बीस बार कह चुकी हूँ कि कहीं कोई छोटी सी दुकान... ..

डा० वर्मा—

वह इस नगर में तो सम्भव नहीं, और दूसरी जगह जाकर दुकान जमाने की हिम्मत अब मुझ में नहीं, यहाँ तो लोग फिर भी जान गए हैं, यह जो तीन चार महीने बीते हैं, अवश्य खराब लगते हैं, पर धीरे-धीरे यह भी ठीक हो जाएँगे, बस तुम ज़रा सहायता...

श्रीमती वर्मा—

पैसा मेरे पास . ....

डा० वर्मा—

मैं कहता हूँ एक पैसा भी नहीं चाहिए।

[नौकर थाली परस कर लाता है, श्रीमती वर्मा हाथ के स्वेटर को कुर्सी की पीठ पर रख कर थाली को नौकर से ले, मेज पर रख देती हैं और वर्मा साहिब फिर कुर्सी पर बैठ जाते हैं]

श्रीमती वर्मा—

(नौकर से) चल बैठ रसोई मे, ज़रूरत होगी तो तुम्हे बुला लेंगे।

(नौकर चला जाता है।)

(डा० वर्मा से) अब बताइये आप वह अपनी स्कीम ।

(मुस्कराती है।)

डा० वर्मा—

मैं कहता हूँ तुम हँसती हो, सुनोगी तो दाद दोगी।

श्रीमती वर्मा—

अब कहिए भी !

डा० वर्मा—

इस तरह खड़े-खड़े क्या कहूँ, इधर कुर्सी पर बैठो, ध्यान से सुनो तो कुछ कहूँ।

श्रीमती वर्मा—

(हँसती है) मैं कहती हूँ आप कहिए, मैं ध्यान से सुन रही हूँ, दिन भर बैठी-बैठी थक गई हूँ।

(डा० वर्मा खाना शुरू कर देते हैं।)

डा० वर्मा—

(ग्रास तोड़ते हुए) बात यह है कि आज कपूर आया था।

श्रीमती वर्मा—

कौन कपूर ?

डा० वर्मा—

डा० कपूर ! वही जो स्कूल में मेरे साथ पढ़ता था, जिसने पाँच के बदले दस वर्ष में एम० बी० बी० एस० की डिग्री ली, जो कभी पढ़ा नहीं किन्तु फिर भी पास हो गया। कुछ ही महीने हुए उसने सरकूलर रोड पर दूकान खोली है और चल भी निकली है, अपना अपना भाग्य है न।

(कुछ क्षण तक चुपचाप खाना खाता है ।)

—और फिर बात यह है कि उसकी दूकान ठीक मौक़े पर स्थित है स्टेशन से सीधा मार्ग होने से बाहर के रोगी तो उसके यहाँ फँसते ही हैं, पर शहर के रोगी भी वहीं पड़ते हैं ।

श्रीमती वर्मा—

लेकिन......

डा० वर्मा—

और तुम नहीं जानतीं बाहर के रोगियों से कितना लाभ होता है, काम ख़राब हो जाए तो डर नहीं, बिगड़ जाए डर नहीं, और यदि अच्छा हो जाए तो बाहर से और भी रोगी आने लगते हैं और फिर सब से बड़ी बात तो यह है कि उनसे फ़ीस अधिक ली जा सकती है ।

(जल्दी-जल्दी खाना खाता है ।)

श्रीमती वर्मा—

मैं पूछती हूँ कि कपूर के यहाँ बाहर से रोगी आते हैं और बीच शहर के रोगी आते हैं इससे हमें क्या ? बात तो तब है कि...

डा० वर्मा—

(खाना-खाते-खाते हाथ से रोक कर और पानी के घूँट से ग्रास निगल कर) मैं कहता हूँ तुम बात तो सुनती नहीं कि ले उड़ती हो, स्कीम तो यही सोची कि वे सब रोगी हमारे यहाँ भी आने लगें ।

(मुंह ज़रा सा दरवाज़ा खोल कर झाँकता है ।)

मुन्नू—

बाबू जी, रोटी लाऊँ।

डा० वर्मा—

(चीख कर) तुम्हें किसने आवाज़ दी है, बैठ जाकर, जब ज़रूरत होगी आवाज़ दी जाएगी (पत्नी से, स्वर को सयत करके) और वह इस तरह कि डाक्टर कपूर से मैंने कहा है—तुम्हारे रोगियों में से जिन्हें दाँतों का कष्ट हो उन से तुम मेरे नाम की सिफ़ारिश कर दो।

(श्रीमती वर्मा कहकहा लगाती है।)

श्रीमती वर्मा—

मैं कहती हूँ

(फिर हँसती है।)

—यही आपकी वह स्कीम थी जिसके लिए इतनी भूमिका बाँधी गई ?

(फिर हँसती है।)

—राम राम ! मैं हँसते-हँसते मर जाऊँगी, भला कपूर को क्या पड़ी है कि वह आपके यहाँ रोगी भेजता फिरे।

डा० वर्मा—

(खाना छोड़ कर कदरे तलखी के साथ) तुम सुनती तो कुछ-हो नहीं......मैंने उसके साथ कमीशन तय किया है।

श्रीमती वर्मा—

(तनिक गम्भीर होकर, जैसे समझने का प्रयास करके) कमीशन !

डा० वर्मा—

हाँ कमीशन, २५ प्रतिशत, जिन रोगियों से वह मेरी सिफ़ारिस करेगा, उनसे जो फ़ीस मैं लूँगा, उसका २५ प्रतिशत डाक्टर कपूर को भेज दूँगा।

श्रीमती वर्मा—

(चुप)

डा० वर्मा—

(तनिक उल्लास से) और कौन सा मैं वह अपनी जेब से दूँगा, अरे इतनी ही अधिक मैं उनसे फ़ीस चार्ज कर लूँगा, भला मैं अपनी फीस छोड़ सकता हूँ ?

श्रीमती वर्मा—

(चुप)

डा० वर्मा—

(उठ कर) और फिर देखो, कमीशन तो मुझे केवल एक वार ही देना पड़ेगा, पर रोगी तो वह मेरा हो गया, फिर यदि वह दस वार आए तो कोई दस वार थोड़े ही मैं कमीशन दूँगा। बस पहली वार जो दे दिया सो दे दिया, और फिर एक रोगी का काम यदि उसकी इच्छा के अनुसार हो जाए, तो समझो दस रोगी अपने हो गए, जाने कितनो से फिर वह मेरे नाम की सिफ़ारिश करे और फिर उन सब पर भी कमीशन देने की आवश्यकता नहीं।

[जैसे दुर्गा सर करके बैठ जाता है। ...
तक जैसे प्रभावित खड़ी रहती है फिर—]

श्रीमती वर्मा—

हाँ, यह स्कीम आपकी अच्छी है।

डा० वर्मा—

पर एक ही कठिनाई है !

श्रीमती वर्मा—

कठिनाई ?

डा० वर्मा—

बात यह है कि कपूर ने साथ-साथ ऐनकों का काम भी आरम्भ कर दिया है और वह मुझसे इस बात की आशा रखता है कि मैं भी उसे कोई आँखो का रोगी भेजूँ।

श्रीमती वर्मा—

(चुप)

डा० वर्मा—

वह भी मुझे २५ प्रतिशत कमीशन देगा।

श्रीमती वर्मा—

यह तो ठीक है, इससे दोनो को दोहरा लाभ होगा।

डा० वर्मा—

(जैसे विवशता के साथ) दोहरा लाभ तो होगा, पर अभी

सीजन* शुरू नहीं हुआ, इन दिनों मेरे यहाँ रोगी वैसे ही कम आते हैं और फिर यदि यही हाल रहा, तो हो सकता है कि उनमें आँखों का मरीज एक वर्ष तक न आए।

[श्रीमती वर्मा कुर्सी से पीठ लगा लेती हैं, फिर चुप-चाप स्वेटर बुनने लगती हैं और डाक्टर वर्मा चुपचाप खाना खाने लगते हैं।]

डा० वर्मा—

(एक-दो ग्रास खाकर) और फिर यदि मैं कोई रोगी उसे न भेज सका, तो कपूर को शायद याद भी न रहे, आदमी तो वह नया ही है, और योग्य कभी वह था नहीं, पर पैसे वाला है, अकड़ उसकी किसी से कम नहीं।

(श्रीमती वर्मा चुपचाप स्वेटर बुनती है।)

डा० वर्मा—

अब अगर तुम कुछ सहायता करो तो यह मुश्किल आसान हो जाए, मैं चाहता हूँ कि उसकी ओर से रोगी जल्दी ही आने-जाने लगें, यदि उधर से कुछ सहारा मिले तो दूसरे डाक्टरों से भी बात करूँ।

श्रीमती वर्मा—

(जिसके चेहरे का रंग वापस आ जाता है।) मै सहायता करूँ?

---

*सीजन=काम का मौसिम।

डा० वर्मा—

मैं चाहता हूँ कि कपूर के यहाँ योंही दो-चार आदमी भेज
[illegible], जो ऐसे ही अपनी आँखों के बारे में उससे परामर्श करें, चिकित्सा
[illegible] चाहें उससे न कराएँ, लाभ इसका यह होगा, कि कपूर को मेरा
[illegible]ी ख़याल रहेगा, और यदि उसने दो-चार आदमी भी भेज दिए
[illegible]ो महीने का ख़र्च निकल जायगा।

श्रीमती वर्मा—

तो इसमें मैं क्या कर सकती हूँ।

डा० वर्मा—

बात यह है कि पहले पहल मैं एकदम किसी दूसरे आदमी को
[illegible]ैसे भेज सकता हूँ। अपना आदमी हो, तो उसे यह सब बात
[illegible]मझाई जा सकती है। इसके बाद तो कुछ दिनो तक मैं कोई न
[illegible]ोई आदमी तैयार कर लूँगा। वह बाबू रामलाल ही ऐनक
[illegible]गवाना चाहते थे, मुझसे पूछ भी रहे थे, न हुआ तो उनसे ही कपूर
[illegible]े यहाँ जाने को कह दूँगा।

श्रीमती वर्मा—

हाँ, अपने आदमी के सिवा किसी को यह सब कैसे कहा जा सकता है?

डा० वर्मा—

(नौकर को आवाज़ देते हैं) ओ मुंडू!

(मुंडू आता है।)

डा० वर्मा—

एक-दो गर्म फुल्के ला और (तश्तरी उसकी ओर सरकाते हैं।)

यह सब्ज़ी भी गर्म कर ला (पत्नी से) इसीलिए मैं तुम से कहता हूँ कि तुम कुछ सहायता करो।

श्रीमती वर्मा—

मैं जाऊँ।

(हँसती है।)

डा० वर्मा—

नहीं तुम ज़रा परतूल चन्द से कहो।

श्रीमती वर्मा—

(उठकर और कानों पर हाथ रखे हुए कुछ क़दम जाकर) न जी न, मेरा भाई ही इस काम के लिए रह गया।

डा० वर्मा—

(उठकर उसके पीछे जाते हुए) तो यह कोई बुरा काम तो नहीं! कोई जोखम का काम तो नहीं। बस उसे ज़रा जाना है और कहना है कि मेरी आँखों मे कुछ तकलीफ है, पढ़ने में कष्ट होता है। जो औषधि वह दे, ले आए। या आँखो का निरीक्षण कराने की फ़ीस पूछ कर चला आए। इसके वाद जाने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं तो....... ....

श्रीमती वर्मा—

(कानों पर हाथ रखकर) न चाचा, किसी और को तैयार कर लो।

[नौकर सब्ज़ी की कटोरी और फुल्के ले आता है।

डा० वर्मा मुँह फुलाए हुए जाकर कुर्सी पर बैठ जाते हैं और अपना समस्त क्रोध रोटी पर उतारने लगते हैं।

दो ग्रास जल्दी-जल्दी खाने के बाद नौकर को आवाज़ देते हैं।]

—ओ मुंडू, ओ मुंडू !

(मुंडू दरवाज़े से झाँकता है।)

डा० वर्मा—

यह गर्म करके लाया है, बदमाश, पाजी, ले जा इसे उठा कर।

[नौकर डरता-डरता सब्ज़ी की तश्तरी उठा कर ले जाता है, डाक्टर वर्मा अचार ही से खाना खाने लगते हैं।]

कुछ क्षण के लिए खामोशी

जिसमें डाक्टर वर्मा पूर्ववत् जल्दी जल्दी खाना खाए जाते हैं और श्रीमती वर्मा जल्दी-जल्दी सलाइयाँ चढाए जाती हैं, फिर उनके पास आकर चुपचाप खड़ी हो जाती है, मुंडू फिर सब्ज़ी गर्म करके ले आता है।]

श्रीमती वर्मा—

(जैसे अपने आप) मैं कहती हूँ, परतूल के बदले किसी दूसरे को नहीं भेजा जा सकता।

[डा० वर्मा पानी का गिलास मुँह से लगा लेते हैं और गट-गट पानी पीने लगते हैं।]

श्रीमती वर्मा—

(उसी स्वर में) और कुछ नहीं, अभी लड़का ही तो है, मुझको उससे सदैव ही भय रहता है, कहीं कुछ हँसी की ही बात कर दे और तुम्हारे वे डाक्टर कपूर बिगड़ जाएँ।

[डा॰ वर्मा गिलास रख देते हैं और विना उत्तर दिए नीचा ध्यान किए खाना खाते हैं ।]

श्रीमती वर्मा—

अच्छा मैं उससे पूछती हूँ ।

नौकर को आवाज़ देती है ।

—वे मुंडू !

(नौकर दरवाजे से झाँकता है ।)

—जा तो ज़रा, नीचे परतूल पढ़ रहा है उसे बुला ला ?

[मुंडू चला जाता है ।

खामोशी

जिसमें डाक्टर साहव धीरे-धीरे खाना खाते हैं और श्रीमती वर्मा आहिस्ते आहिस्ते स्वेटर बुनती हैं ।

कुछ क्षण बाद सीढियों में चप्पल की फट-फट सुनाई देती है और दूसरे क्षण परतूलचन्द पाँवों में चप्पल, कमर में लकीरदार नाइट सूट का पायजामा, गले में खुले कालर की धारीदार कमीज़ और उस पर एक गहरे भूरे रंग की लोई का फेंटा मारे प्रवेश करता है ।

आकर मेज़ के पास खड़ा हो जाता है ।]

परतूल—

कहिए जीजा जी !

(जीजा जी चुपचाप खाना खाए जाते हैं ।)

श्रीमती वर्मा—

बात यह है परतूल कि तुम्हारे जीजा जी डा॰ कपूर को अपनी सहायता के लिए कमीशन देंगे ।

(डा० वर्मा जोर से थाली में चम्मच फेंकते हैं ।)

परतूल—

सहायता के लिए कमीशन देंगे डाक्टर कपूर को, ...जीजा जी ..?

श्रीमती वर्मा—

बात यह है कि......

डा० वर्मा—

(क्रोध से) बकवास ! (उठकर) बात यह है परतूल कि सरकूलर रोड पर जो नये डाक्टर आए हैं न, कपूर—आई स्पेशे-लिस्ट*, उनसे मैंने समझौता किया है कि वे मुझे दाँतों के रोगी भेजा करें और मैं उन्हे आँखों के मरीज भेजा करूँगा । और उन रोगियों से हम जो फ़ीस लेंगे, उसमें से २५ प्रतिशत एक दूसरे को कमीशन दे दिया करेंगे, आपस का यह समझौता हममें तय हुआ है, इससे हम दोनों का दोहरा फ़ायदा होगा ।

परतूल—

हाँ, यह खूब है ।

श्रीमती वर्मा—

खूब तो है, पर तुम इनकी कुछ सहायता करो तब न ।

परतूल—

मैं सहायता करूँ ?

डा० वर्मा—

भाई, तुम कल उनके यहाँ चले जाना, कहना—जब मैं पढ़ता हूँ, तो मेरी आँखें दुखने लगती हैं, मस्तक में पीड़ा होने लगती है,

* आंखों के विशेषज्ञ ।

देखिए कहीं मायोपिया (myopia) तो नहीं हो गया।

परतूल—

मायोपिया! मैं तो बीस के बदले तीस फुट से चार्ट की अन्तिम पंक्ति पढ़ सकता हूँ।

डा० वर्मा—

तुम भी बस वह हो—अरे भाई, कोई सचमुच ऐनक थोड़े ही लगवानी है। बात यह है कि तुम्हें कपूर ने कभी देखा नहीं और तुम्हें यह बताने की आवश्यकता भी नहीं कि तुम मेरे रिश्तेदार हो। तुम कहना कि मैं उनका पेशेंट हूँ और उन्होंने आपका नाम बताया है। एक कार्ड तुम मुझसे ले जाना, उस पर मैं अपने हस्ताक्षर कर दूँगा, कार्ड उसे दे देना और अपनी तकलीफ़—कुछ भी, हाँ कुछ भी बता देना। दवाई डाले तो डलवा लेना। ऐनक लगवाने को कहे तो निरीक्षण की फ़ीस पूछ कर चले आना। वह समझेगा कि मुझे उसका खयाल है और वह भी शीघ्र ही कोई न कोई दाँतो का पेशेंट भेज देगा।

परतूल—

नहीं-नहीं जीजा जी, यह काम मुझसे न होगा।

[डा० वर्मा पत्नी की ओर ऐसी नजरों से देखते हैं, कि देख लिये, तुम्हारे भाई भी और फिर जाकर रोटी पर जी का बुखार निकालना शुरू कर देते हैं।]

परतूल—

नहीं जी, मुझसे यह फ्राड* (fraud) नहीं हो सकता।

---

* धोखा।

डा० वर्मा—

(ग्रास तोड़ते हुए मुँह फुला कर) झाड़ !

श्रीमती वर्मा—

(शिकायत के स्वर में) देखो परतूल, अपने जीजा जी का इतना काम भी तुम से नहीं हो सकता।

(आर्द्र नयनों से उसकी ओर देखती है।)

परतूल—

देखो बहन ....

श्रीमती वर्मा—

जाओ हटो, इतना काम भी नहीं कर सकते !

(मुँह फेरकर जल्दी-जल्दी स्वेटर बुनती है।)

परतूल—

(तनिक समीप आकर धरती में दृष्टि जमाए) मैं कहता हूँ, मैं चला तो जाऊँगा पर मुझसे चुप न बैठा रहा जा सकेगा, यदि उसने निरीक्षण आरम्भ कर दिया . ...

डा० वर्मा—

कर दिया (उठकर) तो फिर क्या हो गया, क्या हो गया फिर, तुम चुपके से निरीक्षण करवा लेना, जो दवाई वह डाले डाल लेने देना, यदि टेस्ट भी करवाने को कहे, तो मैं कहता हूँ टेस्ट भी करवा लेना, रुपये मैं दे दूंगा। अरे जो रुपये वह टेस्ट के लेगा, उनके २५ प्रतिशत तो हमारे घर में ही आ जाएँगे और बाक़ी यदि

दो पेशेंट भी उसने भेज दिये तो सबकी कसर निकाल लूँगा। बस जरा कुछ क्षण चुप बैठे रहना।

श्रीमती वर्मा—

हाँ जो काम करना होता है, करना ही होता है।

परतूल—

अच्छा-अच्छा तो मैं कल चला जाऊँगा, सुबह कालेज जाने से पहले।

(चप्पल फटफटाता चला जाता है।)

डा० वर्मा—

(अत्यधिक प्रसन्नता से) मैं कहता हूँ शीला, यह स्कीम यदि चल निकली तो मैं नगर भर के सब डाक्टरो से कमीशन तय कर लूँगा और फिर इस मकान या दुकान के किराये की बिसात ही क्या है ? कितने डाक्टर हैं लाहौर शहर मे ?—देखो कल ही मैं डा० बृजलाल से बात करूँगा।

(नौकर को आवाज देता है।)

—ओ मुंडू, ओ मुंडू !

(मुंडू दरवाजे से झाँकता है।)

डा० वर्मा—

यह सब गर्म करके ला, सब ठंडा हो गया है।

श्रीमती वर्मा—

यह मुआ क्या गर्म करेगा, मैं जाकर ठीक तरह गर्म करके लाती हूँ।

(स्वेटर हाथ में लिये ही चली जाती है)

पर्दा

तीसरा दृश्य

स्थान—

डाक्टर वर्मा की सर्जरी।

समय—

दूसरे दिन ६ बजे सुबह।

[सब कुछ वैसे ही है जैसे पहले दृश्य में। बायीं ओर के एक कौच पर एक रोगी बैठा डाक्टर वर्मा की प्रतीक्षा कर रहा है। रंग-रूप से देहाती मालूम होता है।

छोटे मेज से उर्दू का एक समाचार-पत्र उठा कर पढ़ता है और फिर उसे रखकर अंग्रेजी के समाचार-पत्र की तसवीरें देखता है।

कुछ क्षण बाद सर्जरी से डाक्टर वर्मा दाखिल होते हैं।]

रोगी—

(उठकर थथलाती आवाज में) **नमस्कार डाक्टर साहब!**

डा० वर्मा—

नमस्कार! कहिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

(रोगी जेब से एक लिफाफा निकालकर देता है ।)

रोगी—

मुझे डाक्टर कपूर ने भेजा है ।

[डा० वर्मा लिफाफा खोल कर पढते हैं, पढते पढ़ते उनके मुख पर उल्लास की रेखा दौड जाती है]

डा० वर्मा—

अच्छा तो आप दूर से डाक्टर कपूर के रिश्तेदार होते हैं ।

रोगी—

जी, जी !

डा० वर्मा—

बैठिए, बैठिए !

(रोगी सकुचाता हुआ बैठ जाता है ।)

डा० वर्मा—

(स्वयं भी बैठकर) डा० कपूर की मुझ पर विशेष कृपा है । मैं तो एक तरह से उनका फ़ेमेली डेन्टिस्ट मेरा मतलब कि घर का दन्दानसाज़ हूँ । कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि उनके कुटुम्ब में किसी को दाँतों का कष्ट हुआ हो और उन्होंने मुझे सेवा का अवसर न दिया हो ।

(एक बार फिर पत्र उठाकर पढ़ता है ।)

—हूँ, तो आप राहों से आए हैं ?

रोगी—

जी !

डा० वर्मा—

वहाँ आप कहीं नौकर हैं ?

रोगी—

जी नहीं, नौकर तो मैं किसी जगह नहीं !

(मुस्कराता है ।)

डा० वर्मा—

" तो काम, मेरा मतलब है कि आप . . (हँसता है ।)

रोगी—

काम आपकी कृपा से अच्छा है, उधर देहात में साहूकारा है और क़स्बे मे एक दूकान भी है ।

डा० वर्मा—

(खिसियानी हँसी के साथ) तो फिर आपको काम की क्या आवश्यकता है, जिसके घर में......(हँसता है ।) मेरा मतलब है कि........ ख़ैर तो आप लाहौर यौंही सैर के लिए आए हैं ।

रोगी—

जी, सैर ही समझ लीजिए, कुछ काम भी था, फिर मिलना-जुलना भी हो गया और इस बहाने लाहौर भी देख लिया, आजकल नुमाइश हो रही है, उसका भी........ ....

डा० वर्मा—

(उठते हुए) वहाँ के दो आदमी मुझसे पूरा सेट लगवा चुके हैं। आज तक वे उसकी प्रशंसा करते हैं और दाँतों की चिकित्सा तो वहाँ के कई मान्य व्यक्तियों ने मुझ से कराई है । पंडित रामप्रसाद

डा० वर्मा—

(क्रोध से) बिना उबाले ही क्या रख दिया उनको ? (बलचरन फिर भी चुप है ।)

डा० वर्मा—

तो फिर खड़ा क्या देख रहा है, कितनी बार कहा है कि एक बार जब किसी की डाढ़ निकालूँ तो औज़ारो को उबाल लिया कर ।

(बलचरन चला जाता है ।)

डा० वर्मा—

idiot* (रोगी से) आप कुछ देर के लिए अभी बैठें, बात यह है कि एक आदमी के मुँह में जो औज़ार जाए उसे वैसे ही दूसरे के मुँह में न लगाना चाहिए । मैंने अभी एक मरीज की दो डाढें निकाली हैं, और इस मूर्ख ने अभी औज़ारों को उबाला नहीं । दूसरे डाक्टर इस बात का खयाल नहीं रखते, पर मैं इस मामले मे अत्यन्त सावधान रहता हूँ ।

रोगी—

(मुँह बन्द करके बैठता हुआ) क्यो नहीं, क्यो नहीं, आप योग्य डाक्टर जो हुए, कपूर साहब ने आपकी बड़ी प्रशंसा की है । मैं तो आता ही न था, उन्होने दाँत देखे तो कहने लगे, इनका शीघ्र इलाज करा लो, नहीं तो दाँतों ही से हाथ धोने पड़ेंगे और दाँतों के बाद आँखो की बारी आएगी ।

---

*idiot=मूर्ख ।

डा० वर्मा—

एक आँखो पर ही क्या, मैं कहता हूँ दाँतों की ख़राबी के कारण कब्ज़, दाँतो की ख़राबी के कारण पेचिश, दाँतो की ख़राबी के कारण अतिसार, दाँतों की ख़राबी के कारण दिल की धड़कन, जोड़ो का दर्द, गठिया और (आवाज़ भारी करके) मृत्यु तक हो जाती है। (रोगी बैठा-बैठा काँप जाता है) ये जितने हड्डियों के ढाँचे, चुँधी आँखों और पिचके गालो वाले लोग आपको दिखाई देते है वे दाँतों ही के मरीज़ तो हैं। वह देखिए ..

(मॉटो दिखाता है।)

मुँह शरीर का दरवाज़ा है उसकी रक्षा करो।
ख़राब दाँत क़ब्र खोदने वाले फावड़े हैं।

रोगी—

(हकलाते हुए) यदि डाक्टर साहब कोई दाँत निकालना पड़ा तो कोई कष्ट..............

डा० वर्मा—

(घूमकर) मैं कहता हूँ ज़रा भी नहीं। वह आपके पास ही नवां-शहर के लाला घनश्याम दास हेड-क्लर्क—मैंने उनके पिता, उनकी माता, उनके दादा, उनके कुटुम्ब के दूसरे व्यक्तियों के दाँत निकाले, पर किसी को अणु-मात्र भी कष्ट महसूस नहीं हुआ।

रोगी—

कौन घनश्याम दास.... ...

डा० वर्मा—

(वेपरवाही से) वे अब वहाँ से बदल गए हैं, आप उन्हे नहीं जानते ।

(घंटी वजती है ।)

डा० वर्मा—

आ जाइये (रोगी से) हाँ तो मैं कह रहा था.........

(डा० वृजलाल प्रवेश करते हैं ।)

डा० वर्मा—

(रोगी से) ये मेरे एक और मरीज़ आए हैं, आप ज़रा सर्जरी मे जाकर पधारिये, मैं अभी दो मिनट में आता हूँ (नौकर को आवाज देता है ।) वलचरन, वलचरन !

(वलचरन सर्जरी से आता है ।)

डा० वर्मा—

इनको ज़रा सर्जरी में ले जाकर विठाओ, मैं अभी आता हूँ ।

(नौकर और रोगी जाते हैं ।)

डा० वृजलाल—

मैं तुम्हारा पेशेंट हूँ वर्मा !

डा० वर्मा—

अरे भई वह तो है !

(दोनों हँसते हैं ।)

डा० वर्मा—

तुम ठीक अवसर पर आए वृज, मैं तुम्हारी ओर जाने वाला ही था

डा० बृजलाल—

अरे हटो, तुम आने वाले थे।

डा० वर्मा—

नहीं सच ! कहो काम-काज कैसा है आजकल ?

डा० बृजलाल—

मन्दी है बस ! हम कर ही क्या सकते हैं, लोगो में रक्त ही नहीं, उसका निरीक्षण क्या करवाएँगे ?

डा० वर्मा—

इधर भी यही हाल है, रोगी तब तक डेन्टिस्ट के यहाँ जाने का कष्ट नहीं करता जब तक कि गलते-गलते डाढ़ मसूढ़ो के अन्दर न चली जाए और इन्जेक्शनो पर फीस से अधिक मूल्य की दवाई लग जाए।

डा० बृजलाल—

पर मैं तो सोचता हूँ कि आख़िर इसका इलाज क्या किया जाय ? वास्तव में देश की सम्पन्नता के साथ ही हमारी सम्पन्नता लगी हुई है, यदि देश ही कंगाल होगा तो......

डा० वर्मा

लेकिन मैं कहता हूँ, यदि हम सब डाक्टर एक दूसरे से सहयोग करें तो यह कठिनाई बहुत हद तक सुगम हो जाए।

डा० बृजलाल—

एक दूसरे से सहयोग करें ?

डा० वर्मा—

जैसे देखो मैं दाँतो का डाक्टर हूँ—दाँतों की चिकित्सा करता हूँ, पर आँखो का इलाज तो मैं नहीं करता, नाक और कान का इलाज तो मैं नहीं करता, रक्त का निरीक्षण तो मैं नहीं करता और यह सर्वथा सम्भव है कि मेरे रोगियों मे से किसी को आँख, नाक अथवा कान का कष्ट हो, अथवा किसी की एक्स-रे या रक्त का निरीक्षण करवाना हो।

डा० बृजलाल—

(दिलचस्पी लेता हुआ) हाँ-हाँ।

डा० वर्मा—

अब मैं आँख के रोगी को किसी आई स्पेशेलिस्ट के पास और नाक तथा कान के रोगी को किसी नाक-कान के रोगों में निपुण डाक्टर के पास, जिससे मेरा आपस का समझौता हो चुका हो—भेज सकता हूँ और जिस रोगी को रक्त आदि का निरीक्षण करवाना हो उसे भी अपने किसी ऐसे ही मित्र के पास भेज सकता हूँ और इसी तरह वे अपने रोगियों से, जिन्हे दाँतो का कष्ट हो, मेरे नाम की सिफारिश कर सकते हैं।

डा० बृजलाल—

मैं समझा, मैं समझा।

डा० वर्मा—

देखो अब तुम एक्स-रे करते हो अथवा रक्त आदि का निरीक्षण, पर भाई दाँतो की चिकित्सा तो तुम नहीं करते, डाढ़ें तो तुम नहीं

निकालते। अब यदि तुम्हारे मरीजों में से किसी को दाँत की तकलीफ हो तो उसे मेरे यहाँ भेज दो, मैं उससे जो फीस लूँगा उसका २५ प्रतिशत कमीशन तुम्हारे यहाँ भेज दूँगा......

डा० बृजलाल—

यह कमीशन.....

डा० वर्मा—

मैं कहता हूं, इसमें बुरा क्या है? यह तो आपस का सहयोग है। मैं जो मरीज़ तुम्हारे यहाँ भेजूँ उनसे तुम जो लो उसका २५ प्रतिशत मुझे भेज देना। आँख के रोगियो के सम्बन्ध मे ऐसा ही एक समझौता मैंने कल डाक्टर कपूर से किया था, और यह जो रोगी अभी बैठा था यह उसने ही भेजा है और आँखो का एक पेशेंट मैं भी उसे भेज चुका हू।

परतूल—

(बाहर से अत्यन्त क्रोध, दुख और व्यंग के स्वर में) और उस की जो दुर्दशा हुई है वह भी देख लीजिए?

[एक व्यक्ति के सहारे अन्दर प्रवेश करता है और आंखों पर पट्टिया बँधी हैं।]

डा० वर्मा—

(चौंक कर भय से) परतूल!

परतूल—

(जैसे असह्य पीड़ा को रोक कर) कुछ नहीं......शायद एक आँख जाती रही है।

डा० वर्मा—

परतूल......

परतूल—

(थके हुए स्वर में कराहकर) मैंने बिलकुल वैसे ही किया जैसे आपने कहा था। आपके कहने के अनुसार ही मैंने अपनी बीमारी बतला दी। वे निरीक्षण करने लगे तो मैं चुप रहा। देख कर कपूर साहब ने कहा—ज़ीरोआफ़थेलमिया (zero ofthalmia) हो गया है, मैं......

डा० वर्मा—

(गर्जकर) ज़ीरोआफ़थेलमिया!

परतूल—

कहने लगे, बड़ा भयानक रोग है।

डा० वर्मा—

(और भी गर्ज कर) भयानक रोग, जीरो ...आफ़ ..थेलमिया—भयानक रोग!

परतूल—

(दोनों हाथों से मस्तक को पकड़कर कष्ट को रोकते हुए) कहने लगे, सात दिन तक दवाई डलवाओ, फिर ऐनक लगा देंगे।

डा० वर्मा—

पर ज़ीरोआफथेलमिया तो कोई बीमारी नहीं होती मात्र...

परतूल—

(जैसे निढाल होकर) और दवाई की पहली क़िस्त उन्होंने

आँख में डाल दी, और जैसे उसके साथ ही दिमाग़ तक की नसें भी जल उठीं।

(धम से कौंच पर बैठ जाता है)

डा० वर्मा—

(चीख़ कर) पाजी, बदमाश, सुअर, उसे डाक्टर बनाया किसने ? दस वर्ष तो कालेज मे धक्के खाता रहा, उसे प्रेक्टिस करने का अधिकार क्या है, ज़ीरोआफ़थेलमिया मात्र......

परतूल—

मैं तो बेहोश हो गया था (कराहता है) उसने पट्टी बाँध दी और तसल्ली दी, पर मेरी आँखे तो...

डा० वर्मा—

(और भी चीख़ कर) मैं उसे नगर से निकलवा दूँगा, मैं उसे बदनाम कर दूँगा, मैं...

परतूल—

पर मेरी आँख तो......

डा० वर्मा—

(अत्यन्त क्रोध से) मैं उस पर मामला चला दूँगा, हरजाने का दावा कर दूँगा (रुक कर) लेकिन ठहरो, उसका रिश्तेदार उधर सर्जरी में बैठा है......

परतूल—

(जैसे रोकर) पर मेरी आँख तो...

डा० वर्मा—

(पागलों की तरह) मैं उसके सब दाँत उखाड़ दूँगा, उसके मसूढ़ों मे नासूर कर दूँगा।

(दीवानों की भाँति सर्जरी में चला जाता)

परतूल—

(निढाल होकर) पर मेरी आँख तो बस निकली ही जा रही है।

[सिर को बाजुओं में लेकर छोटी मेज पर झुक जाता है। डा० बृजलाल भौंचक्के से देखते रह जाते हैं।]

पर्दा

अधिकार का रक्षक

(एक व्यंग)

पात्र

मि० सेठ	एक दैनिक पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असेम्बली के उम्मीदवार
रामलखन	उनका नौकर
भगवती	रसोइया

कालेज के दो लड़के, सम्पादक, श्रीमती सेठ, नन्हा बलराम इत्यादि।

समय—

आठ बजे सुबह

स्थान—

मि० सेठ के मकान का ड्राइङ्ग रूम

[सामने बायीं ओर, दीवार के साथ एक बड़ी मेज़ लगी हुई है, जिस पर एक रैक में करीने से पुस्तकें चुनी हैं, दायें-बायें कोनों में लोहे की दो ट्रे रक्खी हैं, जिनमें से एक में आवश्यक कागज पत्र आदि और दूसरी में समाचार-पत्र रक्खे हैं। बीच में शीशे का एक डेढ़ वर्गगज़ का चौकोर टुकड़ा रक्खा है, जिसके नीचे जरूरी कागज़ दबे हुए हैं शीशे के टुकड़े और किताबों के रैक के मध्य में एक सुन्दर क़लमदान रक्खा हुआ है और एक-दो कलम शीशे के टुकड़े पर बिखरे पड़े हैं।

मेज़ के इस ओर एक गद्देदार कुर्सी है, जिसके पास ही दायीं ओर एक ऊँचा स्टूल है, जिस पर टेलीफोन का चोंगा रक्खा हुआ है। स्टूल के दायीं ओर एक तख़्त-पोश है, जिस पर सफ़ाई से बिस्तर बिछा हुआ है। कुर्सी और तख़्त-पोश के बीच में स्टूल इस तरह रक्खा हुआ है कि उस

पर पड़ा हुआ टेलीफोन का चोंगा दोनों जगहों से सुगमता के साथ उठाया जा सकता है। तख्तपोश के पास एक आरामकुर्सी पड़ी हुई है। बायीं दीवार के साथ एक कौच का सेट है। बायीं दीवार में दो खिड़कियाँ हैं, जिनके मध्य कैलैएडर लटक रहा है। दायीं ओर दीवार में एक दरवाजा है, जो घर के बरामदे में खुलता है।

पर्दा उठने पर मि० सेठ कुर्सी पर बैठ कोई समाचार-पत्र देखते नज़र आते हैं।]

(टेलीफोन की घंटी बजती है।)

(मि० सेठ समाचार-पत्र ट्रे में फेंककर चोंगा उठाते हैं।)

"हैलो !"

(ज़रा और ऊँचे) "हैलो !"

"हाँ, हाँ, मैं ही बोल रहा हूँ। घनश्यामदास। आप .....अच्छा अच्छा, रलाराम जी मन्त्री हरिजन सभा हैं! नमस्ते, नमस्ते। (ज़रा हँसते हैं) सुनाइए महाराज, कल के जलसे की कैसे रही ?"

"अच्छा ! आप के भाषण के बाद हवा पलट गई। सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो गये ?"

"ठीक ठीक ! आपने खूब कहा, खूब कहा आपने ! वास्तव में मैंने अपना समस्त जीवन पीड़ितों, पददलितो और गिरे हुओं को ऊपर उठाने में लगा दिया है बच्चो को ही लीजिए। हमारे घरों में उनकी दशा कैसी शोचनीय है ? उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की पद्धति कितनी पुरानी ऊल जलूल और दक़्यानूसी है ? उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और

अनुचित दबाव में रख कर उन्हे कितने डरपोक और भीरु बनाया जाता है ? उन्हे... ..."

(छोटा बच्चा बलराम भीतर आता है।)

बलराम—

बाबू जी, बाबू जी, हमे मेले......... .

मि० सेठ—

(पूर्ववत् टेलीफोन पर बातें कर रहे हैं, पर आवाज़ तनिक ऊँची हो जाती है) हाँ, हाँ, मैं कह रहा हूँ कि मैंने बच्चों के लिए, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए उनके स्वास्थ्य......

बलराम—

(और समीप आकर कुर्ते का छोर पकड़ कर) बाबू जी......

मि० सेठ—

(चोंगे से मुँह हटाकर, क्रोध से) ठहर ठहर कमबख्त ! देखता नहीं मैं टेलीफोन पर बात......

(बच्चा रोने लगता है।)

मि० सेठ—

(टेलीफोन पर) मैं आप से अभी एक सेकेंड बात करता हूँ, इधर ज़रा शोर हो रहा है।

(चोंगा खट से मेज़ पर रख देते हैं।)

(बच्चे से) "चल, निकल यहाँ से। सूअर! कमबख्त !!"

[कान पकड़कर उसे दरवाज़े की तरफ घसीटते हैं, बच्चा रोता हुआ बैठ जाता है ।]

(नौकर को आवाज़ देते हैं) "ओ रामलखन, ओ रामलखन !"

रामलखन—

(बाहर से) आये रहे बाबू जी।

(भागता हुआ भीतर आता है। साँस फूली हुई है।)

"जी बाबू जी।"

(मि० सेठ नौकर को पीटते हैं।)

"सूअर ! हरामखोर ! पाजी ! क्यों इसे इधर आने दिया ? क्यों इधर आने दिया इसे ?"

रामलखन—

अब बाबू काहे मारत हो ? लिये तो जात रहे !

(लड़के का बाज़ू थामकर उसे बाहर ले जाता है)

मि० सेठ—

और सुनो, किसी को इधर मत आने देना। कोई बाहर से आये तो पहले आकर ख़बर दे देना। समझे। नहीं तो मारकर खाल उधेड़ दूँगा।

[नौकर और लड़के को बाहर निकालकर ज़ोर से किवाड़ लगा देते हैं।]

"हुँ ! अहमक ! मुफ़्त में इतना समय नष्ट कर दिया।"

(चोंगा उठाते हैं।)

(तनिक कर्कश स्वर में) "हैलो !.........(आवाज़ में ज़रा विनम्रता लाकर) अच्छा, अच्छा, आप अभी हैं (स्वर को कुछ और संयत करके) तो मैं कह रहा था कि प्रांत में मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ

जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन किया जो घरो और स्कूलों में छोटे-छोटे बच्चों पर तोड़ा जाता है और फिर वह मैं ही हूँ, जिसने पाठशालाओ मे शारीरिक दंड को तत्काल बन्द कर देने पर जोर दिया। दूसरे अत्याचार-पीड़ित लोग घरों में काम करने वाले भोले-भाले निरीह नौकर हैं, जो क्रूर मालिकों के जुल्म का शिकार बनते हैं। इस अत्याचार और अन्याय को जड से उखाड़ने के हेतु मैंने नौकर-यूनियन स्थापित की। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी मैंने हरिजनो का पक्ष लिया, उनके स्वत्वो की, उनके अधिकारो की रक्षा के लिए मैंने दिन-रात एक कर दिया है और अब भी यदि परमात्मा ने चाहा और यदि मैं धारा-सभा में गया तो ......"

(दरवाज़ा खुलता है।)

रामलखन—

(दरवाज़े से झाँककर) बाबू जी जमादारिन......

मि० सेठ—

(टेलीफोन पर बात जारी रखते हुए) मैं वहाँ भी हरिजनो की सेवा करूँगा। आप अपनी हरिजनसभा मे इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन—

(ज़रा अन्दर आकर) बाबू जी... .

मि० सेठ—

(क्रोध से) ठहर पाजी, (टेलीफोन में) नहीं नहीं, मैं नौकर से

कह रहा था (खिसियाने से होकर हँसते हैं) हाँ, तो आप घोषित कर दें कि मैं असेम्बली मे हरिजनो के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक मे प्रोपेगेंडा करे।

"हैं......क्या ?... अच्छा अच्छा......मैं अवश्य ही जलसे में शामिल होने का प्रयास करूँगा, क्या करूँ अवकाश नहीं मिलता हिंहिं ....हिंहिं......(हँसते हैं) "अच्छा नमस्कार।"

(टेलीफोन का चोंगा रख देते हैं।)

(नौकर से) तुम्हे तो कहा था, इधर मत आना।

रामलखन—

आप ई तो कहे रहे कि कऊ आए तो इत्तला कर दे ई मुदा अब ई जमादारिन अपनी मजूरी मांगत......

मि० सेठ—

(गुस्से से) कह दो उस से, अगले महीने आये। मेरे पास समय नहीं। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

भगिन—

(दरवाजे के वाहर से विनीत स्वर में) महाराज दूधो नहाओ, पूतों फलो। दो महीने हो गये हैं।

मि० सेठ—

कह जो दिया, फिर आना। जाओ। अव समय नही।

(भगवती प्रवेश करता है।)

भगवती—

जयराम जी की वावू जी।

मि० सेठ—

तुम इस समय क्यों आये हो भगवती ?

भगवती—

बाबू जी, हमारा हिसाब कर दो !

मि० सेठ—

(बेपरवाही से) तुम देखते हो, आज-कल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

भगवती—

बाबू जी, अब एक घड़ी भी नही ठहर सकते। आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिए।

मि० सेठ—

(ज़रा ऊँचे स्वर में) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ। यहाँ अपना तो होश नहीं और तुम हिसाब हिसाब चिल्ला रहे हो।

भगवती—

जब आपकी नौकरी करते हैं तब खाने के लिए और कहाँ माँगने जाँय ?

मि० सेठ—

अभी चार दिन हुए, दो रुपये ले गये थे।

भगवती—

वे कहाँ रहे ? एक तो मार्ग में बनिये की भेट हो गया था। दूसरे से मुश्किल से आज तक काम चला है।

मि० सेठ—

(जेब से रुपया निकालकर फर्श पर फेंकते हुए) तो लो। अभी यह एक रुपया ले जाओ

भगवती—

नहीं बाबू जी, एक एक नहीं। आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिए। वेतन मिले-तीन तीन महीने हो गये हैं। एक-एक, दो-दो से कितने दिन काम चलेगा ? हमारे भी आख़िर बीवी-बच्चे हैं, उन्हे भी खाने-ओढ़ने को चाहिए। आप एक दिन के चाय-पानी में जितना ख़र्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने........

मि० सेठ—

(क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो ? कह जो दिया, अभी यह ले जाओ, बाक़ी फिर ले जाना।

भगवती—

हम तो आज ही सब लेकर जायँगे।

मि० सेठ—

(उठकर, और भी क्रोध से)—क्या कहा ? आज ही लोगे। अभी लोगे ! जा। नहीं देते। एक कौड़ी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से, जा, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामख़ोर, सूअर ! आज तक, सब्ज़ी में, दाल में, सौदा-सुलुफ मे, यहाँ तक कि बाजार से आने वाली हर चीज़ में पैसे रखता रहा, हमने कभी कुछ न कहा और अब यों अकड़ता है। जा। निकल जा।

जाकर अदालत मे मामला चला दे। चोरी के अपराध में छै महीने के लिए जेल न भिजवा दूँ तो नाम नहीं।

भगवती—

सच है बाबू जी, गरीब लाख ईमानदार हो तो भी चोर है, डाकू है और अमीर यदि आँखों में धूल झोंककर हजारो पर हाथ साफ़ कर जाय, चन्दे के नाम पर सहस्रो...... ....।

मि० सेठ—

(क्रोध से पागल होकर) तू जायगा या नहीं, (नौकर को आवाज़ देते हैं) रामलखन, रामलखन !

रामलखन—

जी बाबू जी, जी बाबू जी !

(भागता हुआ भीतर आता है।)

मि० सेठ—

इसको बाहर निकाल दो।

रामलखन—

(भगवती के बलिष्ठ, चौड़े चकले शरीर को नख से शिख तक देख कर) ई को बाहर निकारि दें, ई हम सो कब निकसत, ई तो हमे निकारि दे........

मि० सेठ—

(बाजू से रामलखन को परे हटाकर) हट, तुझसे क्या होगा ?

(भगवती को पकड़कर पीटते हुए बाहर निकालते हैं।)

निकलो, निकलो।

भगवती—

मार लें और मार लें। हमारे चार पैसे रखकर आप लक्षाधीश न हो जायँगे।

[मि० सेठ उसे बाहर निकालकर जोर से दरवाजा बन्द कर देते हैं।]

(रामलखन से) "तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे हो ? निकलो !"

(रामलखन डरकर निकल जाता है।)

मि० सेठ—

(तख़्त-पोश पर लेटते हुए)—मूर्ख, नामाकूल !

[फिर उठकर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं फिर, सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज़ देते हैं·—]

रामलखन, रामलखन !

रामलखन—

(बाहर से) आए रहे बाबू जी !

(प्रवेश करता है।)

मि० सेठ—

अख़बार अभी आया है कि नहीं।

रामलखन—

आ गया बाबू जी, बड़े काका पढ़ि रहन, अभी लाये देत।

मि० सेठ—

पहले इधर क्यों नहीं लाया ? कितनी बार तुझे कहा है, अख़बार पहले इधर लाया कर। ला भाग कर।

(रामलखन भागता हुआ जाता है।)

मि० सेठ—

(घूमते हुए अपने आप) मेरा वक्तव्य कितना ज़ोरदार था, छात्रों में हलचल मच गई होगी, सब की सहानुभूति मेरे साथ हो जायगी।

[टेलीफोन की घंटी बजती है। मि० सेठ जल्दी से चोंगा उठाते हैं।]

(टेलीफोन पर, धीरे से) "हेलो !"

(ज़रा ऊँचे) "हेलो ! कौन साहब ?...मन्त्री होज़री-यूनियन ! अच्छा अच्छा, नमस्कार, नमस्कार। सुनाइए, आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है ?"

"क्या ? ....सब मेरे हक़ मे वोट देने को तैयार हैं। मैं कृतज्ञ हूँ। मै आप का अत्यन्त आभारी हूँ।"

"इस ओर से आप बिलकुल निश्चिन्त रहे। मैं उन आदमियो में से नहीं जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ और जो करता हूँ वही कहता हूँ। आपने मेरा इलेक्शन मैनीफेस्टो (चुनाव सम्बन्धी घोषणा) नहीं पढ़ा। मैं असेम्बली में जाते ही मजदूरो की अवस्था सुधारने का प्रयास करूँगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगों के सम्बन्ध में विशेष बिल धारासभा में पेश करूँगा।"

"क्या ? हाँ...हाँ, इस ओर से भी मैं बेपरवाह नहीं। मैं जानता हूँ, इस सिलसिले में श्रम-जीवियों को किस मुसीबत का सामना

करना पड़ता है। ये पूँजी-पति ग़रीब मजदूरो के कई कई महीनो के वेतन रोककर उन्हें भूखों मरने पर विवश कर देते हैं, स्वयं मोटरो में सैर करते हैं, शानदार होटलो मे खाना खाते है, और जब ये गरीब दिन-रात परिश्रम करने के बाद—लोहू पानी एक कर देने के बाद, अपनी मज़दूरी माँगते हैं तब उन्हे हाथ तंग होने का, कारोबार मे हानि होने का अथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बनाकर टाल देते हैं। मैं असेम्बली मे जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे मे मजदूरो की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायँ और जिन लोगो ने ग़रीब श्रमियों के वेतन तीन महीने से अधिक दबा रक्खे हो उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हे दंड दिया जाय।"

"हाँ, आपकी यह माँग भी सोलहो आने ठीक है। मैं असेम्बली में इस माँग का समर्थन करूंगा। सप्ताह मे ४२ घंटे काम की माँग कोई अनुचित नही। आख़िर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर होना ही चाहिए। तेरह तेरह घंटे की ड्यूटी! भला काम की कुछ हद भी है!"

[धीरे धीरे दरवाज़ा खुलता है और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं

पतले-दुबले से—आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गये हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका का कष्ट है।

धीरे से दरवाज़ा बन्द करके खड़े रहते हैं]

मि० सेठ —

(सम्पादक से) आप बैठिए (टेलीफोन पर) ये हमारे सम्पादक महोदय आये हैं। अच्छा तो फिर संध्या को आप की सभा हो रही है। मैं आने की कोशिश करूँगा। और कोई बात हो तो कहिए। नमस्कार!

(चोंगा रख देते हैं।)

(सम्पादक से) बैठ जाइए। आप खड़े क्यो हैं ?

सम्पादक—

नहीं, नहीं, कोई बात नहीं।

[तकल्लुफ के साथ कौच पर बैठते हैं। रामलखन अखबार लिये आता है।]

रामलखन—

बड़े काका तो देत नहीं रहन, मुदा जबरजस्ती लेई आये।

मि० सेठ—

(समाचार-पत्र लेकर) जा, जा, बाहर बैठ।

[कुर्सी को तख्त-पोश के पास सरका कर उस पर बैठते हैं, पाँव तख्त-पोश पर टिका लेते हैं और समाचार-पत्र देखने लगते हैं।]

सम्पादक—

मैं.... ....मैं...

मि० सेठ—

(अखबार बन्द करके) हाँ, हाँ, पहले आप ही फ़र्माइए ?

सम्पादक—

(ओंठो पर जबान फेरते हुए) बात यह है कि मेरी......मेरा मतलब है......कि मेरी आँखें बहुत खराब हो रही है।

मि० सेठ—

आपको डाक्टर से परामर्श करना चाहिए था । कहिए डाक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ।

सम्पादक—

नहीं, यह बात नहीं, (थूक निगलकर) बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ नहीं सहन कर सकतीं। आप जानते हैं, मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है। बल्कि आज-कल तो साढ़े ग्यारह ही बजे आता हूँ। शाम को छः-सात बजे जाता हूँ, फिर रात को नौ बजे आता हूँ और फिर एक भी बच जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं।

मि० सेठ—

तो आप इतनी देर न बैठा करें। बस, जल्दी काम निबटा दिया............।

सम्पादक—

मैं तो लाख चाहता हूँ, पर जल्दी कैसे निबट सकता है ? एक मैं हूँ और दो दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं, न ठीक लेख लिख सकते हैं, और पत्र बड़े बड़े आठ पृष्ठों का निकालना होता है। फिर भी शायद काम जल्दी खत्म हो जाय, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज़......।

मि० सेठ—

हाँ, हाँ, समाचार तो न रहना चाहिए।

सम्पादक—

और फिर यही नहीं, आप के भाषणों की रिपोर्ट की भी प्रतीक्षा करनी होती है। उन्हें ठीक करते-कराते डेढ़ बज जाता है। अब आप ही बताइए पहले कैसे जा सकते हैं?

मि० सेठ—

(बेज़ारी से) तो आख़िर आप चाहते क्या हैं?

सम्पादक—

मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दें तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मैं और फिर प्रतिसप्ताह बदली भी हो सकती है। इससे......

मि० सेठ—

मैं आप से पहले भी कह चुका हूँ, यह असम्भव है, बिलकुल असम्भव है। अख़बार कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा। इस पर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है? अगले महीने पाँच रुपये मैं आप के बढ़ा दूँगा।

सम्पादक—

मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आख़िर आँखें कब तक बारह-बारह तेरह-तेरह घंटे काम कर सकती हैं?

मि० सेठ—

कैसी मूर्खों की बातें करते हो जी। छः महीने में पाँच रुपया

वृद्धि तो सरकार के घर मे भी नहीं मिलती। वैसे आप काम छोडना चाहे तो शौक से छोड़ दें। एक नहीं दस आदमी मिल जायँगे, लेकिन........

(रामलखन भीतर आता है।)

रामलखन—

बाहर द्वि लड़िका आप से मिलना चाहत रहन।

मि० सेठ—

कौन हैं ?

रामलखन—

कोई सकटड़ी कहे रहन.... ...

मि० सेठ—

जाओ, बुला लाओ। (सम्पादक से) आज के पत्र मे मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है, उसका कालेज के लड़को पर अच्छा प्रभाव पडा है।

सम्पादक—

(मुँह फुलाए हुए) अवश्य पड़ा होगा।

मि० सेठ—

मैंने छात्रो के अधिकारों की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र-संघ ने जो मागें विश्वविद्यालय के सामने पेश की हैं, मैंने उन सबका समर्थन किया है।

[दो लडके प्रवेश करते है। दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा रक्खी है, दूसरे के गले खुले कालर की कमीज है।]

दोनों—

नमस्ते।

मि० सेठ—

नमस्ते !

(दोनों कौच पर बैठते हैं।)

मि० से०—

कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

खुले कालर वाला—

हमने आज आपका वक्तव्य पढ़ा है।

मि० सेठ—

आपने उसे कैसा पसन्द किया ?

वही लड़का—

छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

मि० सेठ—

आपके मित्र किधर वोट दे रहे हैं ?

वही लड़का—

कल तक तो कुछ न पूछिए; लेकिन मैं आपको निश्चय दिलाता कि इस बयान के बाद ७५ प्रतिशत आपकी ओर हो गये हैं। भी हमारी सभा हुई थी। छात्रों का बहुमत आपकी तरफ था।

मि० सेठ—

(प्रसन्नता से) और मैंने ग़लत ही क्या लिखा है ? जिन लोगों

का मन बूढ़ा हो चुका है वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या खाक करेंगे ? युवकों को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हों, जो रिफ़ार्म से खौफ़ न खाये, सुधारों से कन्नी न कतराये।

वही लड़का—

हम अपने कालेज के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन चाहते थे। परन्तु कालेज के सर्वे-सर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

मि० सेठ—

आपको प्रॉटेस्ट (विरोध) करना चाहिए था।

वही लड़का—

हमने हड़ताल कर दी है।

मि० सेठ—

आपने क्या माँगें पेश की हैं ?

वही लड़का—

हम वर्तमान प्रिंसिपल नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबन्ध कर सकता है। कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके नातेदारों से अत्यन्त अपमान-जनक है !

मि० सेठ—

(कुछ उत्साह हीन होकर) तो आप क्या चाहते हैं ?

दोनों—

हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

मि० सेठ—

(गिरी हुई आवाज़ में) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बदले कोई वैधानिक रीति प्रयोग में लाते, प्रबन्धकों से मिल जुल कर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का—

हम सब कुछ करके देख चुके हैं।

मि० सेठ—

हूँ!

टाई वाला लड़का—

बात यह है जनाब कि छात्र कई वर्षों से वर्तमान प्रिंसिपल से असन्तोष प्रकट करते आ रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तनिक भी परवा नहीं की। कई बार आवेदन-पत्र कालेज की प्रबन्धक-कमेटी के पास भेजे गये, पर कमेटी के कानों पर जूँ तक भी नहीं रेंगी। हार कर हमने हड़ताल कर दी है, पर कठिनाई यह है कि कमेटी काफ़ी मज़बूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराये जा रहे हैं, और हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है। इसी लिए हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

मि० सेठ—

(अन्यमनस्कता से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं,

आप कल दफ्तर में जाकर इनको अपना बयान दे दें। ये जित
उचित समझेंगे, छाप देंगे।

दोनों—

(उठते हुए) बहुत बेहतर, कल हम सम्पादक जी की सेवा
उपस्थित होंगे। नमस्कार।

मि० सेठ और सम्पादक—

नमस्कार।

(दोनों का प्रस्थान)

मि० सेठ—

(सम्पादक से) यदि कल ये आयें तो इनका बयान हरगिज
छापना। प्रिंसिपल हमारे कृपालु हैं और कमेटी के सदस्य हमारे मि

सम्पादक—

(मुँह फुलाये हुए) बहुत अच्छा।

मि० सेठ—

आप घबरायँ नहीं, यदि आपको कुछ दिन ज़्यादा काम
करना पड़ गया तो क्या आफ़त आ गई। जब मैंने अखबार शु
किया था तब चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घंटे काम किया कर
था। यह महीना आप किसी न किसी तरह निकालिए, चुनाव
ले, फिर कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

सम्पादक—

(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) बहुत अच्छा।

वाज़ा ज़ोर से खुलता है और बलराम का बाज़ू थामे श्रीमती सेठ बगूले की भाँति प्रवेश करती है।]

श्रीमती सेठ—

मैं कहती हूँ, आप बच्चों से कभी प्यार करना भी सीखेंगे। जब देखो, घूरते, झिडकते, डाँटते नज़र आते हो, जैसे बच्चे अपने न हों, पराये हो। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे ? देखो तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

मि० सेठ—

(पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हें कभी बात करने का सलीका भी आयगा। जाओ इस समय मेरे पास समय नहीं है।

श्रीमती सेठ—

आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त होता भी है ? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से समय निकल आता है ? इतनी देर से ढूँढ़ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसों आवाज़ें दीं, घर का कोना कोना छान मारा। आख़िर देखा कि भूसे की कोठरी में बैठा सिसक रहा है। आख़िर क्या बात हो गई थी ?

मि० सेठ—

(क्रोध से अख़बार को तख़्त-पोश पर पटककर) क्या बके जा रही हो ? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभाल कर रक्खा करो। आ जाते हैं सुबह दिमाग़ चाटने के लिए।

[श्रीमती सेठ बच्चे के दो थप्पड़ लगाती हैं, बच्चा रोता है।]

—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे मे न आया कर। ये बाप नहीं, दुश्मन हैं। लोगो के बच्चो से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास करायेंगे, उनकी उन्नति के लिए भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिए भूलकर भी प्यार का एक शब्द ज़बान पर न लायेंगे।

(बच्चे के एक और चपत लगाती है।)

—तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती (आवाज ऊँची होते होते रोने की हद को पहुँच जाती है)। स्वयं जाकर दिखा आती। तू क्यो आया यहाँ—मार खाने, कान तुड़वाने ?

मि० सेठ—

(क्रोध से पागल से होकर, पत्नी को ढकेलते हुए)—मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो। यहाँ इस कमरे मे आकर क्यो शोर मचा दिया ? अभी कोई आ जाय तो क्या हो ? कितनी बार कहा है, इस कमरे मे न आया करो। घर के अन्दर जाकर बैठा करो।

(श्रीमती सेठ तुनक कर खड़ी हो जाती है।)

—आप कभी घर के अन्दर आयें भी। आप के लिए तो जैसे घर के अन्दर आना गुनाह करने के बराबर है। खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफोन सिरहाने रख कर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलने वालो का ताँता लगा रहे। न हो तो कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आखिर हमें कुछ कहना हो तो किस समय कहे ?

मि० सेठ—

कौन-सा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है, जो कुछ कहने की नौबत आ गई ? जरा-सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

श्रीमती सेठ—

सिर फोड़ने का अरमान रह गया हो तो वह भी निकाल डालिए। कहो तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूँ।

[उन्मादियों की भाँति बच्चे का सिर पकड़कर तख़्त-पोश पर मारती है। मि० सेठ उसे तड़ातड़ पीटते हैं।]

मि० सेठ—

मैं कहता हूँ, तुम पागल हो गई हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधर जाकर मारो, पीटना है तो उधर जाकर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधर जाकर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बकझक से तंग आकर मैं इधर एकान्त में आ गया हूँ। अब यहाँ आकर भी तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया है। क्या चाहती हो ? यहाँ से भी चला जाऊँ ?

श्रीमती सेठ—

(रोते हुए) आप क्यों चले जायँ ? हम ही चली जायँगे !

(भर्राई हुई आवाज़ में नौकर को आवाज़ देती है)

"रामलखन, रामलखन !"

रामलखन—

जी बीबी जी।

(प्रवेश करता है ।)

श्रीमती सेठ—

जाओ । जाकर ताँगा ले आओ । मैं मायके जाऊँगी ।

[तेज़ी से बच्चे को लेकर चली जाती है । दरवाज़ा ज़ोर से बन्द होता है]

मि० सेठ—

वेवकूफ़ !

[आरामकुर्सी पर वैठ कर टाँगे तख़्त पोश पर रख लेते हैं और पीछे को लेटकर अखवार पढ़ने लगते हैं । टैलीफोन की घंटी वजती है ।]

मि० सेठ—

(वहीं से चोंगा उठाकर कर्कश स्वर में) हेलो ! हेलो ! ... नहीं, यह ३८१२ है, ग़लत नम्बर है ।

(वेज़ारी से चोंगा रख देते है ।)

"ईडियट्स"* ।

(टेलीफोन की घंटी फिर वजती है)

(और भी कर्कश स्वर में) "हेलो ! हेलो !"

"कौन ? श्रीमती सरला देवी ! (उठकर वैठता है । चेहरे पर मृदुलता और आवाज़ में माधुर्य आ जाता है) माफ़ कीजिएगा, मैं ज़रा परेशान हूं । सुनाइए तवीअत तो ठीक है ?"

(दीर्घ नि-श्वास छोड़कर) "मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ ।

---

* मूर्ख ।

सुनाइए आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है ? मैं भी कुछ आशा रक्खूँ या नहीं।"

"मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी हूँ। आप निश्चय रक्खें। मैं जी-जान से स्त्रियो के अधिकारो की रक्षा करूँगा। महिलाओ के अधिकारो का मुझ से बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों मे कही नज़र न आयेगा।......"

(पर्दा गिरता है।)

———

पहेली

झाँकी

पात्र

चेतन

आनन्द

लाजवती

मा

समय—

आठ बजे सुबह,

स्थान—

चेतन के घर का दालान

[दायें कोने में, सामने की दीवार में खिड़की है, जिसके साथ ही दीवार में एक छोटा-सा आगे को बढ़ा हुआ ताक़ है, उसके साथ, तनिक हटकर बायीं दीवार में दरवाज़ा है जो आगन में खुलता है। ताक़ पर लाल हलवान का छोटा-सा पर्दा दो नन्ही नन्हीं बरंजियों से टँगा हुआ है। ताक़ के नीचे दीवार पर होई माता (काली माता) बनी हुई है और इसके साथ ही फर्श पर कोने में चौका डालकर आसन और पूजा की चौकी रखी हुई है। आसन पर मा खड़ी, ताक में रखी हुई 'जोत' जगाने का प्रयास कर रही है।

उम्र कोई चालीस वर्ष, किन्तु परिस्थितियों ने इस उम्र ही में उसे बूढ़ी बना दिया है। पिचके गाल, रूखे बाल, आँखें गढ़ों में धँसी, जबड़ों की हड्डियाँ उभरी हुई, शरीर दुर्बल और कमज़ोर; जैसे हड्डियों के पिंजर को कमीज़ और धोती पहना दी गई हो।

एक बार दियासलाई जलाती है, पर वह खिड़की की हवा से बुझ जाती है, फिर जलाती है, फिर बुझ जाती है, फिर तीसरी जलाती है, हवा का झोंका आता है, वह भी बुझ जाती है।]

(बहू को आवाज़ देती है।)

मा—

बहू, लाजवती, लाज !

(आँगन से बहू की आवाज़ आती है।)

बहू—

आई।

[प्रवेश करती है। हाथों में आटा लगा है, बाल खुले हैं, शरीर पर एक मैली-सी धोती और ब्लौज़ और कलाइयों में बिल्लौर की चूड़ियाँ।]

मा—

देखो बहू, यह खिड़की बन्द कर दो, और आँगन से ज़रा कुछ फूल ले आओ।

[बहू खिड़की बन्द करके चली जाती है। मा फिर दियासलाई जलाकर जोत जगाती है, फिर नत-मस्तक हो कर प्रार्थना करती है।]

'हे मा, हे शक्ति, तुम्हारी जोत मेरे घर मे सदैव जलती रहे, इस घर के अँधेरे को दूर करती रहे, बहू को सुमति दे......'

[बहू फूल लेकर प्रवेश करती है और चुपचाप आसन के पास रखी हुई चौकी पर रख कर चली जाती है।]

मा—

(पूर्ववत् प्रार्थना करती हुई) चेतन को सुमति दे………

[बाहर से चेतन और आनन्द के बातें करने की आवाज़ सुनाई देती है।]

चेतन—

मैं शर्त लगाता हूँ अगर कैट (Cat)* न हो।

आनन्द—

कार (Car)‡ होगा, देख लेना।

[मा जोत के आगे फिर एक बार झुककर आसन पर बैठ जाती है और पूजा करने लगती है। बाहर दोनों बराबर बहस कर रहे हैं।]

चेतन—

मैं कहता हूँ कैट ही होगा, मैं शर्त लगाता हूँ।

आनन्द—

(हठ के स्वर में) कार है।

चेतन—

तो लगाओ शर्त।

आनन्द—

शर्त! कितने की?

चेतन—

पाँच, पाँच की?

---

*कैट=बिल्ली ‡कार=मोटर

आनन्द—

(हँसकर) शर्त तो जुआरी लगाते हैं, और फिर अगर यहाँ जैब में पाँच रुपए हो तो और छ हल ही न भेज दें.........

चेतन—

(बेज़ारी से) हुँ!

आनन्द—

और फिर यह तो मात्र कामन सेंस अर्थात् आम समझ की बात है, कार की पों-पों से प्रायः पड़ौसी तंग आ जाते हैं और उनमें लड़ाई हो जाती है।

चेतन—

और जो बिल्लियाँ रात को लड़ें।

[पूजा में विघ्न पड़ जाने से मा के तेवर चढ़ जाते हैं और माला वह जल्दी जल्दी फेरने लगती है।]

आनन्द—

अरे कार की पों-पों से बिल्ली की म्याऊँ-म्याऊँ का क्या मुकाबला? कार की पो-पो कान के पास हो, तो कुम्भकरण भी वर्षो की नींद से जागकर उठ खड़ा हो और बिल्ली की म्याऊँ-म्याऊँ...... (कहकहा लगाता है) सोचो यदि दिन-भर दफ़्तर में बैठे-बैठे सिर खपाने के बाद थका-हारा तुम्हारा मस्तिष्क स्वप्न-संसार के मज़े ले रहा हो और उस वक्त तुम्हारे पड़ौसी की कार अपने भद्दे और भोंडे स्वर मे पों-पों कर उठे तो तुम उस नामाक़ूल पड़ौसी का सिर न फोड़ने को तैयार हो जाओगे।

[कुछ क्षण ख़ामोशी जिसमें मा की गुनगुनाहट तनिक ऊँची और माला फेरने की गति तीव्र हो जाती है। दोनों आंगन के दरवाज़े से दाख़िल होते हैं और मा को देखकर ठिठकते हैं, फिर चेतन आगे बढता है । हाथ में अँग्रेज़ी का अखबार है ।]

चेतन—

मा !

(मा और भी जल्दी-जल्दी माला फेरती है ।)

चेतन—

मा !

[मा नहीं बोलती, भृकुटी चढ़ा उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देख कर पूर्ववत् जल्दी-जल्दी गुनगुनाये जाती है और माला फेरे जाती है]

चेतन—

देखो मा, मुझे एक बात बता दो, फिर चाहे सारी उम्र बैठी पूजा करना ।

[पास पड़े हुए लोटे से चरणामृत लेकर, माला को गोद में रख कर मा चेतन की ओर देखती है ।]

मा—

कहो !

चेतन—

साधारणतया बिल्लियों के कारण पड़ौसियों में झगड़ा हो जाता है अथवा मोटर के कारण ।

मा—

चेतन !

[आग ऐसी दृष्टि से उसकी ओर देखती है और फिर काली माता के सामने सिर झुका कर माला फेरने लगती है।]

चेतन—

देखो मा, मैं तुम्हें पाठ न करने दूँगा, मुझे इस पहेली का हल भेजना है और आज अन्तिम तिथि है ।

मा—

(माला रख कर) आग लगे तुम्हारी इन मुई पहेलियों को, तुम मुझे शान्ति से पाठ भी न करने दोगे, क्या बड़ा काम है तुम्हें ! (मुँह बनाकर) पहेली भेजना है। घर की ग़रीबी की तुम्हे परवा नहीं, धर्म-कर्म का तुम्हे ध्यान नहीं। बस इन्हीं निगोड़ी पहेलियों के पीछे अपना और दूसरों का समय गँवाया करो।

चेतन—

(दार्शनिक भाव से) बिना समय गँवाये कभी किसी ने कुछ पाया है ?

मा—

(चिढ़ कर) तो इतना समय तुमने गँवाया, एक वर्ष तो मुझे भी देखते हो गया, कानी कौड़ी तो तुमने पायी नहीं । वहू सूने हाथों फिर रही है, जहाँ पहले सोने के गोखड़ू थे अब वहाँ बल्लौर की चूड़ियाँ हैं, कपड़ा पहनने के लिये उसके पास नहीं। खैर, गहनों कपड़ों की बात जाने दो, लेकिन पेट तो खाने को माँगेगा, तुम्हें

उसका भी कुछ ध्यान नहीं, इस एक वर्ष में कितना समय और फिर कितना रुपया तुमने गँवाया ? बताओ, क्या दिया अब तक तुम्हारी इन पहेलियो ने ? मैं तो अभी शक्ति माता से प्रार्थना कर रही थी कि तुम्हे सुमति दे, बहु को सुमति दे, जो तुम्हे सब कुछ उठा कर दे देती है ।

चेतन—

(लज्जित हुए बिना) अपने पास से कुछ गँवाये बिना किसी को संसार में कुछ नहीं मिलता । बिना यत्न किये कोई कुछ नहीं पाता, प्रत्येक वस्तु के लिये कुछ न कुछ त्याग करना पडता है, कुछ न कुछ ग़म खाना पड़ता है । दुर्भाग्य से मुझे इस समय रुपया और वक्त दोनों का त्याग करना पड़ रहा है; लेकिन एक बार पहला इनाम आ गया तो उम्र-भर के कष्ट मिट जायँगे । तेईस हज़ार का इनाम है, तेईस हज़ार का !

मा—

यह बिना जान खपाये, बैठे-बिठाये दौलत पाने की इच्छा ही तो ख़राबियो की जड़ है । अपने पड़ौसी ही को देख लो, सारी उम्र वह सट्टा लगाता रहा, अन्त मे मकान भी गिरवी रख दिया, पर एक पैसा भी उसे न आया और जब मरा तो कफ़न के लिए मुहल्लेवालों ने चन्दा इकट्ठा किया ।

चेतन—

यह सट्टा नहीं !

मा—

तुम्हारे पिता ही ने क्या पाया ? उम्र-भर वे लाटरियों के मुँह अपने गाढ़े पसीने की कमाई गँवाया किये, लाखों के स्वप्न देखा किये, पर कभी उनका स्वप्न पूरा न हुआ और घर की यह हालत हो गई।

चेतन—

(खीज कर) मैं बीस बार कह चुका हूँ कि यह लाटरी नहीं।

मा—

(उपदेश के स्वर में) बेटा, लाटरी क्या, सट्टा क्या, यह क्या, सब जुआ है, और जुए में कौन जीता है और जो जीता है, वही तो हारा है। अन्त कभी किसी का अच्छा न हुआ। इस तरह पाया हुआ कभी किसी के पास न रहा।

चेतन—

(सुनी अनसुनी करके) यह न जुआ है, न सट्टा है, न लाटरी; यह तो महज़ कामन सेंस की, आम समझ की बात है और इसीलिये इस पहेली को कामन नाम कामन सेंस क्रास वर्ड पज्ज़ल (आम समझ की व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली) रखा गया है... ..

मा—

(चिढ़ कर) और यह जो तुम कहते हो कि लाखों आदमी यह पहेली हल करते हैं, इनके पास आम समझ नहीं क्या ? क्या वे सब मूर्ख हैं। दिमाग़ के नाम पर उनके भुस भरा हुआ है ? और किस तरह तुम्हारे उस उजड्ड, गँवार दसवीं पास इंस्पेक्टर को दस हज़ार का इनाम आ गया और तुम बी० ए० पास करके भी

अभी तक टापते फिर रहे हो। क्या उसका दिमाग़, उसकी आम समझ तुमसे अच्छी है ? फिर यह जुआ नहीं तो क्या है ?

चेतन—

(निरुत्तर होकर क्रोध से) तुम्हे कुछ मालूम तो है नहीं, इनसे इनसे ...

आनन्द—

(आगे बढ़ कर) बुद्धि तीक्ष्ण होती है।

मा—

(माला फेरते हुए उठकर) जानती हूँ इस एक वर्ष तुम दोनो की बुद्धि कितनी तीक्ष्ण हुई है। यदि पागल नही तो और एक साल तक हो जाओगे। (चेतन से) तुम स्वयं तो पाठ पूजा छोड़ बैठे हो, मुझे भी दो घडी ईश्वर का नाम न लेने दोगे।

(तेजी से उसके पास से होती हुई आँगन को चली जाती है।)

चेतन—

(खोखला क़हक़हा लगाता है।) पाठ-पूजा, पाठ-पूजा...हुं।' सब ढकोसले हैं। मैंने जितना समय पाठ-पूजा करने में लगाया, यदि उतना पहेली हल करने मे लगाता तो पहला इनाम मार चुका होता और विलायत की सैर अलग कर ली होती।

आनन्द—

भाग्य में होता तब ना !

चेतन—

अरे भाग्य कैसा ? वह तेईस हज़ार रुपया, मुफ्त इंग्लिस्तान की

सैर और सम्राट जार्ज के राज्याभिषेक पर दो टिकटो का इनाम मेरे हाथ आते-आते रह गया। सब हल मैंने ठीक सोचा था, भरने वैठा तो दो इन्टरलाकर* (Interlocker) ग़लत कर बैठा, उस समय भगवान के ध्यान में मग्न था, ख़याल था, इतनी पाठ-पूजा, नेम-धरम† करता हूँ, भगवान क्या मेरी नही सुनेंगे। पूरा विश्वास था यह इनाम मुझे ही मिलेगा। उसी में ही पाँच ग़लतियाँ निकली (चवा-चवाकर) पूजा-पाठ ! हुँ, मैंने उसी दिन सब बन्द कर दिया। अब अधिक परिश्रम से, निष्ठा से, पूर्ण रूप से सोच-विचार कर पहेली का हल भेजता हूँ। यही जो पिछला भेजा है, खूब सोच समझ कर भेजा है, और फिर इन्टरलाकर सारे परम्यूट (Permute)‡ कर दिये हैं, देख लेना इस बार प्रथम पुरस्कार न आया, तो ग़लतियाँ दो-एक ही होगी।

आनन्द—

अरे सदैव ऐसा ही होता है, जब-जब तुमने कहा—कि एक या दो ग़लतियाँ होगी तब तब पाँच-पाँच, छः-छः आई और याद है, जब एक बार तुमने कहा था—अबके पहला इनाम बस मैं मार ही लूँगा, तभी ग़लतियाँ दस आई थीं।

चेतन—

नही, इस बार देख लेना, अव्वल तो पहला इनाम लिया, नहीं तो एक-दो ग़लतियो का तो कहीं गया ही नहीं।

*परस्पर-सलग्न शब्द। †नेम-धरम=नियम-धर्म का अपभ्रंश। ‡अदल-बदल कर कुल जितने शब्द बनें विभिन्न कूपनों में उतने भर देना।

आनन्द—

आ गया तुम्हे इनाम !

चेतन—

१८ हल भेजे हैं।

आनन्द—

यहाँ ३६-३६ भेजने वालो को कौड़ी न मिली।

चेतन—

(आनन्द के कन्धे पर थपकी देकर) कहो यार, अगर यह इनाम तुम्हें आ जाये तो।

आनन्द—

यहाँ ऐसे किस्मत के धनी नहीं, जब से पहेली का हल भेजना शुरू किया है, पाँच ही ग़लतियाँ आती हैं, न चार न छः। तुम्हारी तरह अगर कहीं मैं तीन से अधिक हल भेजता तो अब तक कई छोटे-मोटे इनाम मार ले जाता।

चेतन—

लेकिन मैं पूछता हूँ, अगर यह तुम्हे आ जाये !

आनन्द—

मुझे आ चुका, मैं तो अब छोड़ दूँगा भाई, आयेगा किसी बुद्धू को, भला बताओ उस नामाक़ूल इंस्पेक्टर को आ गया। जानते हो उसने क्या किया ? रुपया उसने बैंक में जमा करा दिया, और अब उसके हल से पहेलियाँ भेज रहा है।

चेतन—

अरे वह फिर ले जायगा, कम्बख्त, तीस-तीस कूपन भेज देता है।

आनन्द—

कमाना पड़े तब न, ब्याज भी तो चालीस के लगभग आता होगा। परमात्मा देता भी है तो किन मूर्खों को। एक दिन मैंने पूछा—खान, अगर अबके इनाम आजाय तो क्या करो? कहने लगा—एक बीवी और ले आऊँ। और वह अपने कथन के सम्बन्ध मे गम्भीर था। तुम ही कहो किन गधो को रुपया मिलता है, अरे दस हज़ार तो दूर रहे, मुझे तो यदि पॉच हज़ार ही आ जायें तो वह काम कर दिखाऊँ कि.........

(बाहर से आनन्द की मा आवाज देती है।)

—नन्दी! नन्दी!!

आनन्द—

लो भई जाता हूँ, यहाँ देख लेंगी तो खा ही जायेंगी, कहा करती हैं—वह तो कमाता है, चाहे गँवाये, तुम किस बाप की कमाई उड़ाते हो, मा की बातें...हिंहिं, हिंहिं......

[फीकी हँसी हँसता है और आँगन के दरवाजे से भाग जाता है।]

(लाजवती प्रवेश करती है।)

लाजवती—

मै कहती हूँ आज दफ्तर जाओगे या नहीं, अभी शौचादि से

निवृत्त नहीं हुए, दातुन नहीं की, नहाये नहीं, क्या इन मुँहजली पहेलियों के पीछे लगे रहते हो।

चेतन—

लाज!

लाज०—

और मैं कहती हूँ, यहाँ आकर क्या शोर मचा दिया, मा पाठ कहाँ करेगी? और पाठ न करेगी, तो खाना न खायेगी, और मैं बैठी रहूँगी दो बजे तक।

चेतन—

अच्छा शोर मत मचाओ, अभी चला जाऊँगा, सिर्फ़ एक बात बता दो!

लाज०—

कहो!

चेतन—

साधारणतया, पड़ोसियों में कौन-सी चीज़ झगड़े का कारण बनती है, बिल्ली या मोटर?

लाज०—

तुम्हे तो बस सारा दिन यही रहता है, मैं क्या जानूँ!

(जाना चाहती है।)

चेतन—

(रास्ता रोकता हुआ) मेरी बात का उत्तर देकर जाओ, आज हल भेजना है, आख़री तारीख़ है।

लाज०—

हटो मुझे जाने दो ।

चेतन—

पहले बताओ ।

लाज०—

अच्छा फिर कहो !

चेतन—

(हाथ के अखबार को देखकर) यह तो अंग्रेज़ी मे है, तुम अभिप्राय समझ लो । लिखा है कि साधारणतया पड़ौसियो मे इसकी आवाज़ झगड़े का कारण बन जाती है, अब बताओ वह चीज बिल्ली है या मोटर ! क्योंकि इन दोनो में से एक ही चीज़ आ सकती है ।

लाज०—

बिल्ली !

चेतन—

(आँखों में चमक आ जाती है) कैसे ?

लाज०—

सब पड़ोसियो के पास तो मोटरें होती नहीं, हो सकता है सारे के सारे मुहल्ले में भी एक मोटर न हो, और बिल्लियाँ तो घर घर...

चेतन—

(खुशी से पागल होकर) लाज !

[उसे आलिंगन-बद्ध कर लेता है और फिर उसे छोड़

कर जेब से फाऊन्टेन पैन निकाल कर वही पत्र पर लिखता है ।]

(ऊँचे स्वर से) सी, ए, टी, कैट, मैंने बैक * कर दिया (उछल कर) ईसपात की तरह न टूटने वाला बैंकर !

(कुछ नम्र होकर) लाज, यदि हमें पहला इनाम आ जाये !

(लाजवती की आँखें खुली रह जाती हैं ।)

—सच कहता हूँ तुम्हें गहनों-कपड़ों से लाद दूँ । (दीर्घ निश्वास छोड़ता है) मैंने तुम्हें कितना कष्ट दिया है लाज ! तुम्हारा कोई शौक तो मैं क्या पूरा करता, उलटा तुम्हारी बनी हुई चीजें भी ले जाता रहा । (सहसा जोश से) लेकिन मैं इन सब की कसर निकाल दूँगा लाज, एक बार केवल एक बार इनाम आ जाये । गहनों के ढेर लगा दूँगा, कपडों के अम्बार लगा दूँगा, पच्चीस हजार का इनाम है इस बार—पच्चीस हज़ार का,—एक कार और दो आदमियों के लिए मुफ़्त इंग्लिस्तान की सैर । लाज, मैं तुम्हें अपने साथ इंग्लिस्तान ले जाऊँगा—इंग्लिस्तान—स्वतंत्रता, सम्पन्नता, धन, वैभव के उस देश में . . .!

[लाजवती के अनिमेष खुले दृगों में चमक आ जाती है, फिर उदासी छा जाती है ।]

लाज०—

(एक लम्बी साँस खींचकर) अच्छा जाओ । आ गया पच्चीस

---

* जो शब्द सब कूपनों में वैसा का वैसा रहने दिया जाए ।

हज़ार ! अब चल कर नहाओ, खाओ, दफ़्तर की तैयारी करो और मा को इधर पाठ करने दो ।

(जल्दी-जल्दी चली जाती है ।)

[दीर्घ निश्वास छोड़ कर अखबार पढ़ता-पढ़ता चेतन उसके पीछे पीछे जाता है ।]

पर्दा

हंस १९३९

जोंक

एक प्रहसन

पात्र

भोलानाथ	पंजाबी
प्रोफेसर आनन्द	हिन्दुस्तानी
बनवारीलाल	मारवाड़ी
कमला	कुछ दूसरे आदमी
और	

पहला दृश्य

स्थान—

भोलानाथ के निवास-स्थान का एक कमरा

[कमरा बहुत बड़ा नहीं और न बहुत खुला है ।

कमरे में दो चारपाइयाँ भी बिछी हैं और दो कुर्सियाँ तथा एक छोटी-सी मेज़ भी रखी है । इसलिए इसे आप शयन-गृह भी कह सकते हैं और ड्राइंग रूम भी ।

शेष सामान वही है जो एक साधारण क्लर्क या पत्रकार या ऐसी ही स्थिति के किसी व्यक्ति के यहाँ हो सकता है ।

पर्दा उठने पर हम प्रोफ़ेसर आनन्द को मेज़ के पास रखी कुर्सी पर बैठे एक समामाचार-पत्र के पन्ने उलटते देखते हैं ।

प्रो० आनन्द शक्ल सूरत में प्रोफ़ेसर मालूम होते हों सो बात नहीं । शिक्षा जब से बढ़ी और हिन्दुस्तानियों के भोजन की मात्रा जब से घटी है, तब से कॉलेजों में ऐसे छात्र आने लगे हैं जिनको उनकी माताएँ आसानी से आधा टिकट लेकर अपने पास ज़नाने डिब्बे में बैठा सकती हैं । प्रोफेसर आनन्द शायद छात्रावस्था में ऐसी ही किस्म के छात्र थे । अभी अभी एम० ए० करके वे पढ़ाने लगे हैं, इस लिए उनकी अवस्था में कुछ विशेष अन्तर नहीं

आया। उन्हें कोई भी मैट्रिक का छात्र समझ सकता है और इस समय तो वे प्रोफेसर की पोशाक में भी हैं। एक तहबन्द और कमीज पहने शायद हजामत बना कर बैठे हैं, क्योंकि साबन की सफेदी उनके चेहरे पर लगी दिखाई देती है और मेज़ पर पड़ा हजामत का खुला सामान भी इसी बात की गवाही देता है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद भोलानाथ दायीं ओर के कमरे से प्रवेश करता है, जिधर शायद रसोई है।

शक्ल-सूरत से भोलानाथ प्रोफेसर साहब से कुछ मोटा ताज़ा है, पर चेहरे से जो बुद्धिमत्ता प्रोफेसर साहब के टपकती है, उसका वहा अभाव है—सीधा-सादा सनकी-सा आदमी है, कंधे झाड़ने की आदत है, ऐसे आदमियों को लोग कभी कभी ज़नमुरीद भी कह दिया करते हैं। चेहरे से उसके घबराहट टपकती है।

आनन्द पूर्ववत् समाचार-पत्र में निमग्न है]

भोलानाथ—

(परेशानी के स्वर में) यह फिर आ गया आनन्द ! तुम मेरी मदद करो परमात्मा के लिए !

आनन्द—

(समाचार पत्र रख कर) कौन आ गया ?

(भोलानाथ परेशान सा चारपाई में धँस जाता है)

भोलानाथ—

यह एक बार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता।

आनन्द—

आखिर मालूम भी हो, कौन है यह ?

भोलानाथ—

अरे कौन क्या ? राहों का आदमी है।

आनन्द—

राहों का—तो यों कहो कि वतनी है।

भोलानाथ—

अब वतनी को तो दो हज़ार व्यक्ति मेरे वतनी हैं और कमरे (कंधे झाड़ कर) मेरे पास केवल यही दो हैं।

आनन्द—

(हैरानी से) तो क्या इनसे जान पहचान भी नहीं।

(उठ कर कमरे में घूमता है।)

भोलानाथ—

बस, इस बात का चोर हूँ कि अपने छोटे भाई से इनके कारनामे सुनता रहा हूँ और...

आनन्द—

(रुक कर) लेकिन तुमने कहा न कि फिर आ गया, तो इसका मतलब यह है कि ये साहब पहले भी तुम्हें अतिथि सत्कार का आनन्द प्रदान कर चुके हैं।

भोलानाथ—

(हँस कर) क्या बताऊँ, तनिक बैठो तो विस्तार से कुछ कहूँ !

(आनन्द चारपाई पर बैठना चाहता है।)

भोलानाथ—

यहाँ क्या बैठते हो, वह कुर्सी ले लो।

(कुर्सी घसीटता है।)

आनन्द—

मैं यही अच्छा हूँ, तुम कहो ?

भोलानाथ—

(फिर तनिक-सा हँस कर) बात यह है कि वह मेरा छोटा भाई है न परसराम, जैसा वह आवारा है, वैसे ही उसके दोस्त हैं। उसका एक मित्र है सोम या मोम या क्या जाने क्या ? वह जब भी आता था, अपने इसी भाई की बड़ी प्रशंसा करता था।

आनन्द—

देशभक्त हैं ?

भोलानाथ—

खाक़!

आनन्द—

तो कवि होंगे ?

भोलानाथ—

इसकी सात पुश्तों में किसी ने कवि का नाम नहीं सुना !

आनन्द—

तो वक्ता, डाक्टर, हकीम, वैद्य......?

भोलानाथ—

(चिढ़ कर) तुम सुनते तो हो नहीं और ले उड़ते हो, वे थे न प्रसिद्ध अभिनेता—मास्टर बरकत ! यह उनके साथ रह चुका है।

आनन्द—

(कहकहा लगा कर) तो ये एक्टर हैं !

भोलानाथ—

(कंधे झाड़ कर) अब यह तो मुझे मालूम नहीं कि इसने मास्टरब एकत के प्रसिद्ध ड्रामो "मूर्ख राज" और "दर्दे जिगर" में कोई ाभिनय किया है या नहीं, सुना था कि यह उनका दायाँ हाथ है।

आनन्द—

लेकिन इस बात से तुम्हें क्या दिलचस्पी है ?

भोलानाथ—

(खिन्न हँसी के साथ) अरे बचपन था और क्या। जब हम मैट्रिक में पढ़ते थे तब उनके नाटक पढ़ने का बहुत शौक था और यद्यपि उन्हें देखने का अवसर प्राप्त न हुआ था।

आनन्द—

'मूर्ख राज' और 'दर्दे जिगर'... ...(व्यंग से हँसता है।)

भोलानाथ—

अरे भाई, उन दिनों हमारे लिए तो वही कालीदास और शेक्स-पियर थे, उनके नाटक पढ़ कर और मुहल्ले के एक रसीली आवाज वाले लड़के से उनके गाने सुन कर, हम उनकी कला का रसास्वादन कर लिया करते थे।

आनन्द—

(हँस कर) और उनके अज्ञात प्रशंसकों में थे ?

भोलानाथ—

तुम तो जानते हो कि प्रसिद्ध लेखकों, नेताओं और अभि-नेताओं को, लोग साधारण आदमियों से कुछ ऊँचा ही समझते हैं, और उनसे तो दूर रहा, उनके साथ रहने वालों तक से बात कर के फूले नहीं समाते। फिर ये तो मास्टर बरकत के दायें हाथ थे . .

आनन्द—

(बेचैनी से) अब समाप्त भी करो, तो इनसे तुम्हारी भेंट हुई ?

(फिर उठ कर घूमने लगता है।)

भोलानाथ—

तुम समाप्त करने भी दो ? भेंट ! तुम इसे भेंट कह सकते हो। हमारे नगर के हैं न डॉक्टर किशोर....

आनन्द—

(रुक कर) नगर नहीं, क़स्बा कहो, राहों कस्बा है।

भोलानाथ—

(चिढ कर) अरे हाँ हाँ, तो मैंने इन्हें डॉक्टर किशोरीलाल की दूकान पर बैठे देखा, इनकी बातें दिलचस्पी से सुनी और शायद एक दो बातों का उत्तर भी दिया था, बस... . .

आनन्द—

फिर तुम इन्हें घर ले आये ?

भोलानाथ—

(और भी चिढ कर) अरे कहाँ, तुम बात भी करने दोगे। इस बात को तो दस वर्ष बीत गये, इसके बाद तो ये पिछले वर्ष मिले

और तुम्हे मालूम है कि पिछले वर्ष में किस मुसीबत से दिन काट रहा था। चंगड़मुहल्ले का वह पीपल वेहड़ा और उसमे वह लाला ज्वालादास का नारकीय मकान और उसकी दो अँधेरी कोठड़ियाँ, जिनमें न कोई रोशनदान था और न खिड़की और गर्मियों मे बाहर गली में सोना पड़ता था।

आनन्द —

(ऊब कर) लेकिन बात तो तुम इनसे मिलने की कर रहे थे ?

भोलानाथ—

हाँ, उन्हीं दिनो जब मैं दिन-भर नौकरी की तलाश मे घूमता था, ये एक दिन 'पीपल वेहड़ा' के पास ही चगड मुहल्ले मे मिल गये और इन्होंने दूर ही से 'नमस्कार' की। मैं जल्दी में तो था, पर क्षण भर के लिए रुक गया।

आनन्द—

तो कहने का मतलब यह ·····

भोलानाथ —

(अपनी बात जारी रखते हुए) इन्होंने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और कहा कि डॉक्टर किशोरीलाल आपकी बड़ी प्रशसा किया करते हैं। आप मुझे पहचान तो गये हैं—? मैंने कहा—हाँ हाँ मास्टर बरकत · ······कहने लगे—बीमार है बेचारा दर्द-गुर्दा से !

आनन्द—

दर्देजिगर से नहीं ?

भोलानाथ—

(व्यग की ओर ध्यान न देकर) मैंने खेद प्रकट किया और पूछा कि सुनाइए कैसे आये ? कहने लगे मुझे भी दर्द-गुर्दा की शिकायत है।

आनन्द—

(कहकहा लगा कर) यह किसी ने कहा है न कि एक ही तरह के पत्ती एक ही तरह उड़ते हैं।

भोलानाथ—

मैंने और भी शोक प्रकट किया। कहने लगे— कर्नल माथुर को दिखाने आया हूँ। कल चला जाऊँगा। मैंने कहा—तो आइए कुछ पानी-वानी पीजिए। कहने लगे—लाला बिहारीलाल प्रतीक्षा तो करते होंगे लेकिन चलिए अपने वतनी का अनुरोध कैसे टाला जा सकता है।

आनन्द—

(कहकहा लगाता है) यह बिहारीलाल कौन थे ?

भोलानाथ—

(जल कर) जाने कोई थे भी या नहीं। उस वक्त मेरे तो पाँव तले से धरती निकल गयी ! अत्यावश्यक काम से जा रहा और मैंने तो यो ही शिष्टाचार के नाते पानी के लिए पूछा था। खैर ले आया और पेशबन्दी के तौर पर मैंने पत्नी से 'सिर्फ' ठंडे पानी का गिलास लाने के लिए कहा।

गली में बिछी हुई चारपाई पर लेट गये। मुझे जल्दी जाना था। मैंने सकुचाते-सकुचाते कहा - मुझे……अ जरा जल्दी है, आप किधर जा रहे हैं ? लेकिन इन्होंने बात काट कर और टाँगे फैलाते हुए कहा—हाँ-हाँ आप शौक से हो जाइए, मै थक गया हूँ, यहीं ज़रा आराम करूँगा। …

आनन्द—

(हँस कर) ख़ूब !

भोलानाथ—

(कंधे झाड़ कर) तुम होते तो मेरी सूरत देखते। नयी-नयी शादी हुई थी और ये हमारे वतनी…

(आनन्द फिर कहक़हा लगाता है।)

भोलानाथ—

मरता क्या न करता। मुझे तो जल्दी थी, हार कर चला गया। वापस आया तो ये मज़े से बिस्तरा बिछवा कर सो रहे थे और पत्नी बेचारी अन्दर गर्मी में तप रही थी। पहुँचा तो कहने लगी—आपका इतना घनिष्ट मित्र तो मैंने देखा नहीं। आपके जाने के बाद कहने लगा—तुम तो शायद नवाँ शहर की हो। मैं चुप रही तो बोला—फिर तो हमारी बहिन हुई।

आनन्द—

बहिन !

भोलानाथ—

(अपनी बात जारी रखते हुए) पानी पीकर यह महाशय वही

भोलानाथ—

अब कमला मुझसे पूछने लगी कि ये हैं कौन ? मै क्या बताता ? इतना कह कर चुप हो रहा कि हमारे वतनी हैं। चारपाइयाँ हमारे पास केवल दो थीं। आखिर वह गरीब सख्त गर्मी मे भी अन्दर फ़र्श पर सोई ! खयाल था दूसरे दिन चले जाएँगे, लेकिन पूरे सात दिन रहे और जब गये तो मैंने कसम खाकर कमला से कहा कि अब कभी नही आयेगे लेकिन फिर आ धमके हैं और कमला ·····।

(कमला प्रवेश करती है।)

कमला—

मैं पूछती हूँ, आप चुप-चाप इधर आकर बैठ गये हैं और वे मुझे इस तरह आदेश दे रहे हैं जैसे मै उनकी कोई मोल ली हुई बाँदी हूँ—'कमला पानी लादो' 'कमला हाथ धुला दो' 'कमला यह कर दो, कमला वह कर दो,' ये हैं कौन ? आप तो कहते थे, मैं इन्हे जानता तक नही, फिर ये क्यों इधर मुँह उठाए चले आते हैं ? इन्हे कोई और ठौर ठिकाना नहीं ?

भोलानाथ—

(घबराकर और कंधे झाड़ कर) अब बताओ·········

(उठ कर खड़ा हो जाता है।)

आनन्द—

तुम ठहरो भाभी मुझे सोचने दो।

(उठ कर माथे पर हाथ रखे सोचता हुआ घूमता है।)

कमला—

लेकिन आप सोच कर करेंगे क्या ? ये कोई इनके पुराने यार होंगे, मुझे इसी बात से तो चिढ़ है कि आखिर ये मुझसे छिपाते क्यों हैं ? क्या मैं इनके मित्रों को घर से निकाल देती हूँ ?

(चारपाई के किनारे बैठ जाती है।)

आनन्द—

देखो भाभी......

कमला—

मैं कुछ नहीं देखना चाहती, देखिए आप से कोई पर्दा नहीं। हमारे पास कमरे दो हैं और फ़ालतू बिस्तर भी नहीं, फिर आप भी यहीं हैं। इनके ये वतनी तो बिस्तर बिछवा कर सो रहेंगे और मैं पड़ी ठिठुरा करूँगी बाहर बरामदे में।

आनन्द—

देखो भाभी, ये इनके मित्र नहीं,यह मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ।

कमला—

तो फिर ये उन्हे साफ जवाब क्यो नहीं देते ?

आनन्द—

यदि इनसे यह हो सकता तब न ?

भोलानाथ—

(जो इस बीच में इधर-उधर घूमता रहा है, रुक कर और कंधे झाड़ कर) हाँ अब वतनी आदमी हैं......

कमला—

वतनी हैं तो……

आनन्द—

देखो झगड़ने से कुछ न बनेगा इस आदमी को धता वताना चाहिए !

कमला—

यही तो मैं कहती हूँ !

आनन्द—

लेकिन यह इनसे हो चुका। अतिथि महोदय की ख़वर तो किसी दूसरी तरह ली जायगी।

[कुछ क्षण खामोशी–जिसमें आनन्द सोचता है और भोलानाथ अंगड़ाई लेता है, फिर—]

आनन्द—

(धीमे स्वर में)मैं पूछता हूँ वह कर क्या रहा है ?

कमला—

शायद वाहर गया है।

आनन्द—

(जिसे तरकीव सूझ गयी है) मैं कहता हूँ तुम लिहाफ़ लेलो और चुपचाप लेट जाओ और यदि कराह सको तो कुछ-कुछ समय के वाद कराहती भी जाओ (भोलानाथ से) देखो भाई, तुम कह देना कि मुझे भूख नहीं। मैं वहाना कर दूँगा कि जी भरा होने से मैं उपवास से हूँ और वस……

(सीढ़ियों से पाँवों की चाप आती है ।)

आनन्द—

(मुड़ कर) मैं कहता हूँ जल्दी करो । (एक-एक शब्द पर जोर देकर) जल्दी करो, इन्हीं कपड़ो समेत लेट जाओ !

(हाथ में दो लौकियाँ लिए बनवारीलाल दाखिल होता है ।)

भोलानाथ—

आइए, आइए ! किधर चले गये थे आप ? ये हैं मेरे मित्र मि० आनन्द, जालंधर में प्रोफेसर हैं, यहाँ प्रिंसिपल गिरधारीलाल से मिलने आये हैं और (बनवारीलाल की ओर संकेत करके) ये हैं मि० बनारसीलाल, मेरे वतनी, किसी ज़माने में प्रसिद्ध अभिनेता मास्टर बरकत के साथ... ..

आनन्द और बनवारीलाल—

(एक साथ) आप से मिल कर बहुत खुशी हुई ।

(दोनों ज़रा हँसते हैं ।)

भोलानाथ—

ये आप क्या उठा लाये इतनी लौकियाँ ?......

(कमला धीमे से कराहती है ।)

बनवारीलाल—

यों ही नीचे चला गया था । बाहर बिक रही थीं, (हँस कर) मैंने कहा चलो......

(कमला तनिक और जोर से कराहती है ।)

वनवारीलाल—

(मुड़ कर और चौंक कर) क्या वात है ? क्या वात है ?

(स्वर में चिंता)

भोलानाथ—

इन्हें अचानक दौरा पड़ गया है । बड़ी मुश्किल से होश आया है प्राय: पड़ जाया करता है दौरा . ...हिस्टीरिया......

वनवारीलाल—

तो आप इलाज... .. ..?

भोलानाथ—

इलाज बहुत कराया । कर्नल...(फिर वात के रुख को बदल कर) ये तो वीमार पड़ गयीं और (जरा हँस कर) लौकियाँ आप इतनी उठा लाये । (फिर आनन्द से) क्यों भाई आनन्द, तुम तो कहते थे...

आनन्द—

मैं तो आज उपवास से हूँ, तवीयत भारी है ।

भोलानाथ—

मैं भी खाने के मूड* में नहीं ।

वनवारीलाल—

(अन्दर रसोई की ओर पग उठाते हुए) तो लौकी की खीर... ...हिस्टीरिया मे वहुत लाभ करती है । और मैं वनाता भी अच्छी हूँ । (जरा हँस कर) साथ ही अपने लिए भी दो रोटियाँ उतार लूँगा और सब्ज़ी भी ... ... .लौकी ही की वन जायगी । मेरा तो खयाल है, आप भी खायँ, मजा न आ जाय तो नाम नहीं । अन्दर अँगीठी

* Mood

तो होगी ही, कोयलों की आँच पर लौकी की खीर बनती भी ऐसी है कि क्या कहूँ ?

(रसोई में चला जाता है ।)

आनन्द—

(धीरे से) यह ऐसे नहीं जायगा ।

बनवारीलाल—

(रसोई से) क्यों भई, मसाला कहाँ है ?

कमला—

(लेटे-लेटे) कह दो, समाप्त हो गया है ।

भोलानाथ —

(ज़रा ऊँचे) मसाला तो यार, समाप्त हो गया !

बनवारीलाल—

(अन्दर से) और घी कहाँ है ?

कमला—

कह दो समाप्त हो गया है !

भोलानाथ—

(कंधे झाड़ कर) अब यह कैसे कह दूँ ?

आनन्द—

(भोलानाथ से, ऊँचे स्वर में) अरे घी नहीं लाये तुम, सवेरे ही भाभी ने कहा था कि घी ख़त्म हो गया है, कैसे गृहस्थ हो तुम !

(धीरे से, शरारत की हँसी हँसता है ।)

वनवारीलाल—

अच्छा एक आने का घी कम-से-कम आज के लिए तो लेता आऊँ। मसाला भी, नहीं और खाँड भी,......मेरा खयाल है...... नहीं! और दूध भी......नहीं! मै जाकर चन्द मिनटों मे सब लाया। ये जब तक कुछ खायँगी नहीं, कमजोरी दूर न होगी।

(चला जाता है।)

आनन्द—

(हैरानी से) यह विचित्र मेहमान है जो मेहमानी के साथ मालिक मकान का कर्तव्य भी पूरा कर रहा है और अपनी जेब से!......

भोलानाथ—

मैं कहता हूँ आनन्द यह जोक है, कोई और तरकीब भिड़ाओ पांच आने खर्च कर देगा तो क्या हुआ? गत वर्ष जाते-जाते मुझ से पाँच रुपये ले गया था।

कमला—

(चारपाई से उछल कर) दिये आपने पाँच रुपये!

भोलानाथ—

(कंधे झाड़ कर) अब मैं......!

कमला—

और मैं पाँच पैसे माँगती हूँ, तो नहीं मिलते।

भोलानाथ—

अब वतनी........!

कमला—

(क्रोध से) तो भुगतिये, पाँच क्या मेरी तरफ से पाँच सौ दे दीजिए। बस मुझे मैके छोड़ आइये !

आनन्द—

(उल्लास से उछल कर) ओह ! (ताली बजाकर) स्प्लैंडिड* मैके......ठीक है ! जल्दी करो, भाभी को लेकर किसी पड़ौसी के यहाँ चले जाओ और वह आया तो मैं कह दूँगा, भाभी की तबीयत बहुत खराब हो गयी थी, आखिर भाई साहब उन्हें मैके छोड़ने चले गये—क्यो ?

(प्रंशसा पाने की इच्छा से दोनों की ओर देखता है।)

भोलानाथ—

हाँ, यह तदबीर खूब है। (पत्नी से) तुम ज़रा अन्दर पड़ौसिन से बातें करना। मैं कुछ देर के लिए उनके पति के पास बैठक में बैठ जाऊँगा। (आनन्द से) लेकिन यार, मैं कहता हूँ यदि वह न गया ?

आनन्द—

उसका बाप भी जायगा। तुम्हारे जाते ही ताला लगा कर मैं भी खिसक जाऊँगा—बस !

कमला—

वाह ! ताला लगा कर आप चले जायँगे तो जो बर्तन वह ले गया है—वे ? नहीं आप यो कहना कि वे चले गये हैं, मैं भी जा

---

* splendid खूब

रहा हूँ, बस उसे निकाल कर घास मण्डी तक छोड़ आना।

भोलानाथ—

घासमंडी तक ! यह ठीक है।

(कहकहा लगता है।)

आनन्द—

हाँ हाँ, लेकिन तुम जल्दी करो, वह आ जायगा।

भोलानाथ—

हाँ-हाँ जल्दी करो, (कमला को ट्रंक खोलने के लिए जाते देख कर) मैं कहता हूँ नयी साड़ी पहनने की जरूरत नहीं, तुम सचमुच मैके नहीं जा रही हो ? और वे हमारे पड़ौसी तुम्हे इन कपड़ो में कई बार देख चुके हैं।

कमला—

(ट्रंक को जोर से बन्द कर उठते हुए) मैं पूछती हूँ.........

आनन्द—

हाँ-हाँ, वहीं पूछना चलो-चलो... ....

(दोनों को ढकेलता हुआ ले जाता है।)

पर्दा

दृश्य दूसरा

उसी मकान का बरामदा

[बरामदा, एक ओर से, जिधर दर्शक बैठे हैं, खुला है। इस ओर बड़ी-बड़ी चिकें लगी हुई हैं, जो खोल दी जाती हैं तो यह बरामदा एक लम्बा-सा कमरा बन जाता है। इस समय चूँकि चिकें बन्द, छत के साथ लटक रही हैं, इसलिए बरामदे में क्या हो रहा है, इसको दर्शक भली भाँति देख सकते हैं।

दो हल्की-हल्की बेंत की कुर्सियाँ बरामदे में बायीं ओर को रखी हैं। उन पर दो वर्ष से रोगन नहीं किया गया। कुर्सियों के आगे एक बेंत की ही तिपाई रखी है। जिस पर मैला सा, कुर्सियों के रंग का नीला कपड़ा बिछा है।

बायीं ओर एक दरवाज़ा है, जो सीढ़ियों पर खुलता है और सामने दो दरवाज़े हैं जो क्रमशः पहले दृश्य के दो कमरों को जाते हैं। रसोई शायद इन कमरों से परे अन्दर की ओर है। दरवाज़े पुरानी तर्ज़ के हैं और इनके ऊपर रौशनदान हैं, जिनके शीशे शायद अभी तक नहीं लगे

या टूट गये हैं। हाँ, उनकी जगह कार्डबोर्ड लगे हुए हैं। दो खाली चारपाइयाँ दीवार के साथ खड़ी हैं।

एक कुर्सी पर मि० आनन्द बैठे हैं, दूसरी कुर्सी पर उनके पैर हैं। उनके दायीं ओर तिपाई पर जूठे खाली बर्तन रखे हैं।

उस समय जब पर्दा उठता है, वे सिगरेट सुलगाने की फिक्र में हैं।]

आनन्द—

(उस दियासलाई को धरती पर पटक कर जो बुझ गयी है) हुँ !!

(भोलानाथ सीढ़ियों के दरवाजे से झाँकता है।)

भोलानाथ—

मैं कहता हूँ, हमें वहाँ बैठे-बैठे एक घंटा हो चुका है और तुमने अभी तक आवाज़ नहीं दी।

(उछल कर आनन्द उसके पास जाते हैं।)

आनन्द—

मैं कहता हूँ, धीरे बोलो, वह रसोई में बैठा खाना खा रहा है।

(दोनों बरामदे के बीच में आ जाते हैं।)

भोलानाथ—

(बर्तनों की ओर देख कर) और यह तुम ?......

आनन्द—

मैंने भी उपवास खोल लिया। कम्बख्त, लौकी की खीर तो बड़े मज़े की बनाता है।

भोलानाथ—

लेकिन........

आनन्द—

लेकिन क्या ? जो तय हुआ था, उसके अनुसार ही मैंने सब कुछ किया। पर वह एक ही शैतान है।

भोलानाथ—

(सोचते हुए) तो गया नहीं ?

आनन्द—

वह इस तरह आसानी से न जायगा, ऐसे को साफ जवाब...

भोलानाथ—

शिष्टाचार, अखलाक.. ...तुम नहीं समझते आनन्द !

(सिर खुजाते हुए कमरे में घूमने लगता है।)

आनन्द—

साफ जवाब नहीं दे सकते तो भुगतो !

भोलानाथ—

तुमने उससे कहा नहीं कि भाभी की तबीयत........

आनन्द—

कहा क्यों नहीं। जब वह सब चीजें वापस लेकर आया तो मैंने बुरा-सा मुँह बना कर कहा—भाभी की तबीयत तो बड़ी खराब हो गयी। इन्होंने कहा मैं तो मैके जाऊँगी, और वे ठहरे जनमुरीद, उसी वक्त लेकर चले गये।

भोलानाथ—

(अत्यन्त क्षोभ से) जनमुरीद !

आनन्द—

(हँस कर और भी धीरे से भेद-भरे स्वर में) अरे वह तो मैंने केवल बात बनाने के लिए कहा था ।

भोलानाथ—

(दिल ही दिल में क्रोध पीकर) हुँ !

आनन्द—

यह कह कर मैं ताला उठाने के लिए बढ़ा और वे रसोई में चले गये । मैंने ताले को हाथों में उछालते हुए कहा—मैं तो जा रहा हूँ । कहने लगे—खाना तो खाते जाइएगा, लौकी की खीर का मज़ा.........।

भोलानाथ—

और तुम्हारे मुँह मे पानी भर आया ?

आनन्द—

नहीं, मैंने कहा—मैं तो जाऊँगा ।

भोलानाथ—

फिर ?

आनन्द—

उसने बेफ़िक्री से अंगीठी में कोयले डाल कर उन्हे सुलगाते हुए कहा—अच्छा तो हो आइए, लेकिन आ जाइएगा जल्दी, ठण्डी खीर का क्या मज़ा आयगा ?

भोलानाथ—

(गुस्से से दाँत पीसकर) हुँ !

आनन्द—

तब मैंने दिल मे सोचा कि यह इस तरह न जायँगे । कोई दूसरी तरकीव सोचनी पड़ेगी । चाहिए यह था कि मैं ताला लगा कर बाहर बरामदे मे मिलता, लेकिन भाभी की दो तश्तरियो ने...

भोलानाथ—

(आकुलता से) फिर-फिर ?

आनन्द—

फिर क्या, मैंने सोचा कि इन्हे यहाँ छोड़ कर घर से नहीं जाना चाहिए, कही कोई चीज़ ही न उठा कर चम्पत हो जायँ, इस लिए बात बदल कर मैंने कहा—वैसे जाने की मुझे कोई जल्दी नहीं। यह आपने ठीक कहा कि खीर का मजा ताज़ी में ही है । लाइए देखें तो सही आप खीर कैसी बनाते हैं? बस, उन्होने खीर तैयार की, लौकी ही की सब्जी बनाई और हल्के-हल्के फुल्के पकाए—कम्बख्त गज़ब की रसोई बनाता है।

भोलानाथ—

(कंधे झाड़ कर निराशातिरेक से) अब..... (सिर नीचा किये घूमता है।)

आनन्द—

अब क्या, तुम भी निश्चिन्त होकर चढ़ा जाओ । भूखे पेट कुछ न सूझेगा, तर माल अन्दर जाय तो........

[अन्दर कमरे से बनवारी रूमाल से हाथ पोंछता हुआ प्रवेश करता है ।]

वनवारीलाल —

(चौंक कर) अरे ! गये नहीं आप ?

भोलानाथ—

(जैसे कब्र से) गाड़ी मिस कर गये ।

वनवारीलाल—

और कमला जी.... ...?

भोलानाथ—

(चिढ कर) उन्हें फिर दौरा पड़ गया ।

वनवारीलाल—

(गम्भीरता से) ओहो, तो कहाँ ....

भोलानाथ —

वेटिंग रूम मे बिठा आया हूँ । दूसरी गाड़ी देर से जाती थी, इसलिए.........

वनवारीलाल—

(अफसोस के साथ अन्दर को मुड़ता हुआ) एक डिब्बे में खीर डाल कर वन्द किये देता हूँ । साथ ले जाइए, विश्वास कीजिए, लौकी की खीर हिस्टीरिया के दौरे में वड़ा लाभ करती है और फिर वे प्रातः से भूखी तो होंगी ?

भोलानाथ—

(क्रोध को छिपाते हुए) नहीं, कष्ट न कीजिए, मैं दवाई के साथ थोड़ा-सा दूध पिला आया हूँ ।

बनवारीलाल—

आप ही लीजिए (आनन्द की ओर देख कर) क्यों प्रोफ़ेसर साहब, इन्होंने भी तो सुबह का... .?

भोलानाथ—

(अन्यमनस्कता से) मैं तो खाने के मूड में नहीं।

बनवारीलाल—

(खिन्न हुए बिना) क्यों न हो (तनिक हँस कर) वह एक बार किसी ने एक फ़क़ीर से पूछा था—खाने का ठीक समय कौन सा है ? उसने उत्तर दिया—सम्पन्न की जब तबीयत हो और विपन्न को जब मिले। आप ठहरे अमीर आदमी और हम.. गरीब ! अच्छा, पान तो लेंगे न ?

भोलानाथ—

(रूखेपन से) मैं पान नहीं खाता।

बनवारीलाल—

(मुस्करा कर) और आप प्रोफ़ेसर साहब ?

आनन्द—

(जो बहुत खा गया है) मुझे कोई आपत्ति नहीं।

बनवारीलाल—

अच्छा मैं नीचे पनवाड़ी से पान ले आऊँ...(बेपरवाही से हँसता हुआ चला जाता है।)

भोलानाथ—

(कन्धे झाड़ कर) मैं कहता हूँ अब......?

आनन्द—

चुप !

भोलानाथ—

(आकुलता से) आखिर अब क्या किया जाय ? वह कब तक पड़ोसी के यहाँ बैठी रहे गी ? तुम तो मजे से खाना खाकर कुर्सी पर डट गये हो और हमारी आँतें...

आनन्द

भई खाना खाने के बाद मेरी तो सोचने समझने की शक्तियाँ जवाब दे जाती हैं, मैं तो सोऊँगा। (उठते हैं।)

भोलानाथ—

लेकिन तुम कहते थे, इसकी खबर लूँगा......

आनन्द—

(फिर बैठ कर) वह तो ज़रूर लूँगा, पर दो-चार मिनट आँख लग जाय तो कुछ सूझे।

[उनींदी आँखों से भोलानाथ की ओर देखता है और हँसता है। भोलानाथ निराश-सा हाथ कमर के पीछे रखे सोचता हुआ घूमता है।]

भोलानाथ—

उठो, हो चुका तुम से। बाहर ताला लगाये देते हैं। स्वयं रो-पीट कर चला जायगा। हम दोनों किसी होटल में खाना खा लेंगे।

आनन्द—

(कुर्सी पर पीछे की ओर लेट कर और जमाई लेकर) तो फिर

मुझे क्यों घसीटते हो ? मुझे नींद लगी है। (फिर कुर्सी से उठता है।)

भोलानाथ—

(जो बहुत तेज़ी से कमरे में घूम रहा है, अचानक रुक कर) आखिर क्या मतलब है तुम्हारा ?

आनन्द—

(फिर कुर्सी में धँस जाता है।) अरे भई तुम बाहर ताला लगा कर जाना चाहते हो, लगा जाओ। उस दूसरे कमरे को अन्दर से बन्द कर जाओ और इस कमरे में बाहर से ताला लगा दो । मुझे तीन बजे प्रिंसिपल गिरधारीलाल से मिलने जाना है। तब मैं उस कमरे से निकल कर बाहर से ताला लगाता जाऊँगा ! अब जल्दी करो नहीं तो वह आ जायगा।

(उठ कर बायीं ओर के कमरे में चला जाता है।)

(अन्दर से)

—लो, मैं तो लेट गया। अब पान स्वप्न ही मे खाऊँगा।

[भोलानाथ कुछ क्षण तक घूमता है फिर तेज़ी से वह भी अन्दर चला जाता है। उसकी क्रोध से भरी चिड़-चिड़ी आवाज आती है।]

—ताला कहाँ है ? मैं कहता हूँ—ताला कहाँ है ?......कम्बख्त ताला......मिल गया ! मिल गया !!

[ताला हाथ में लिए आता है और अंगुली में कुँजी घुमाता है।]

आनन्द—

(अन्दर से) अरे देखो यह उसका बैग बाहर रखते जाओ नहीं तो इसी बहाने आ जायगा।

[भोलानाथ फिर अन्दर जाता है और कपड़े का एक पुराना, भरा सा हैंड बैग लेकर आता है। हैंड-बैग को बाहर दीवार के साथ टिका देता है और दरवाजा बन्द करके ताला लगाने लगता है कि अन्दर से प्रोफेसर आनन्द की आवाज आती है:—]

—सुनो-सुनो।

भोलानाथ—

(फिर जल्दी से किवाड़ खोल कर) कहो !

आनन्द—

अरे बर्तनों को तो अन्दर रखते जाओ !

(भोलानाथ शीघ्रता से बर्तन उठा कर देता है।)

आनन्द—

(बर्तन लेकर) और यह तिपाई और कुर्सी भी दे दो।

[भोलानाथ जल्दी-जल्दी तिपाई और कुर्सियाँ देता है, फिर जल्दी-जल्दी ताला लगाता है। जल्दी में चार-पाई से ठोकर खाता है और बड़बड़ाता हुआ चला जाता है।

कहीं बाहर घड़ियाल 'टन' 'टन' करते दो बजाता है।

बनवारीलाल मुँह में पान दबाये और

कागज़ में लिपटी पान की एक गिलौरी एक हाथ में थामे दाख़िल होता है।

दरवाजे लगे हुए देख कर आवाज़ देता है—

—भोलानाथ-भोलानाथ !

फिर कमरे में ताला लगा और बाहर अपना बैग पड़ा देख कर चौंकता है, मुस्कराता है। फिर अपने आप—

—ख़ैर अभी तो मैं सोऊँगा।

चारपाई बिछाता है, जो दूसरे कमरे के दरवाजे को बिलकुल रोक लेती है। उस पर लेट कर सिगरेट सुल-गाता है और एक दो कश लगा करवट बदल लेता है।]

(पर्दा गिरता है।)

[कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है और बनवारीलाल गहरी नींद में सोया दिखायी देता है, उसके खर्राटों की आवाज साफ सुनायी देती है।]

पर्दा

दृश्य तीसरा

[पर्दा धीरे-धीरे उठता है। दृश्य वही। बनवारीलाल करवट बदलता है। अन्दर घड़ी में तीन बजते हैं, वह धूप की ओर देखता है।]

—ओह, धूप कहाँ चली गयी ?

ऊपर रौशनदान का गत्ता हिलता है और किसी का हाथ बाहर निकलता है। वह चुप चाप करवट बदल लेता है।

धीरे-धीरे गत्ते को हटा कर प्रो० आनन्द बूट-सूट पहने रौशनदान में से बड़ी मुश्किल से उतरने का प्रयास करते हैं।]

बनवारीलाल—

(जैसे किसी की आहट से चौंक कर) कौन है ? (फिर चौंक कर और उठकर) कौन, कौन रौशनदान से अन्दर दाखिल होने का प्रयास कर रहा है ? (शोर मचाता है)चोर....चोर दौड़ियो....भागियो !!

आनन्द—

मैं हूँ आनन्द, (आवाज गले में फँसी सी)।

बनवारीलाल—

(पूर्ववत् स्वर में घबराहट लाकर) चोर......चोर......दौड़ियो......भागियो !!

बनवारीलाल—

...ने इसे हाथ न लगाएगा। इसमे सब गहने बन्द होंगे। पुलिस ही आकर खोलेगी।

आनन्द—

(जो बिलकुल घबरा गया है) मैं...मैं...

मारवाड़ी—

अबे साला, मैं-मैं क्या, नीचे तो उतर ! मार-मार कर भूंस बना देंगे !

हिन्दुस्तानी—

(दार्शनिक भाव से) आजकल की बेकारी ने नौजवानो को चोर और डाकू बना दिया है !

पंजाबी—

ओए, उत्तर ओए ! ओथेई की टँग हो गया ऐं। सूट तां वेखो जिवें नाड्ढूखां दा साला होंदा ऐ !*

[आगे बढ़ कर आनन्द को पाँव से पकड़ कर घसीटता है। वह धम से फर्श पर आ गिरता है । पंजाबी युवक दो चार चौरस थप्पड़ उसके मुँह पर लगा देता है।]

आनन्द—

(क्रोध और अपमान से जलकर) मैं पण्डित भोलानाथ का मित्र प्रो० आनन्द.........

---

* अबे उतर, वहां ही क्या टंग गया है, सूट तो देखिए जैसे नाड्ढूखां का साला होता हो।

बनवारीलाल—

न-न इसे हाथ न लगाएगा। इसमें सब गहने बन्द होंगे। पुलिस ही आकर खोलेगी।

आनन्द—

(जो बिलकुल घबरा गया है) मैं...मैं...

मारवाड़ी—

अबे साला, मैं-मैं क्या, नीचे तो उतर ! मार-मार कर भूंस बना देंगे !

हिन्दुस्तानी—

(दार्शनिक भाव से) आजकल की बेकारी ने नौजवानों को चोर और डाकू बना दिया है !

पंजाबी—

ओए, उत्तर ओए ! ओथेई की टँग हो गया ऐं। सूट तां वेखो जिवें नाढूखां दा साला होंदा ऐ !*

[आगे बढ़ कर आनन्द को पाँव से पकड़ कर घसीटता है। वह धम से फर्श पर आ गिरता है। पंजाबी युवक दो चार चौरस थप्पड़ उसके मुँह पर लगा देता है।]

आनन्द—

(क्रोध और अपमान से जलकर) मैं पण्डित भोलानाथ का मित्र प्रो० आनन्द........

---

* अबे उतर, वहाँ ही क्या टंग गया है, सूट तो देखिए जैसे नाढूखां का साला होता हो।

पंजाबी—

चल चल प्रोफेसर दा बच्चा, जाके थानेवालियाँ नूं दस्सीं कि तू प्रोफ़ेसर हैं जाँ प्रिंसिपल !+

(सब क़हक़हा लगाते हैं ।)

बनवारीलाल—

मैं भी उनका मित्र हूँ, लेकिन उनकी अनुपस्थिति मे मकान नहीं तोड़ता फिरता ।

मारवाड़ी—

आजकल जमानो ऐसोई छै बाबू जी! काई कर्यो जाय ।†

बनवारीलाल—

' (गर्ज कर) क्या किया जाय ! मैं अभी पुलिस को टेलीफोन करता हूँ । आप इसे पकड़ रखे (जाते हुए) और देखिए बैग को हाथ न लगाइएगा ।

[कई और व्यक्ति आते हैं और 'क्या हुआ ?' 'क्या हुआ ?' का शोर मच जाता है ।]

सब—

क्या बात है ? क्या हुआ ? क्या हुआ ?

मारवाड़ी—

यह चोर चौड़े दिहाड़े चोरी कर रिह्यो छो शाब !*

+ चल चल प्रोफेसर का बच्चा, जाकर थाने वालों को बताना कि तू प्रोफ़ेसर है या प्रिंसिपल ! ।

† आजकल का जमाना ऐसा ही है बाबू जी, क्या किया जाय ।

* यह चोर दिन दिहाड़े चोरी कर रहा था साहिब !

हिन्दुस्तानी—

(व्यग्य से) जन्टलमैन चोर !

आनन्द—

मैं कहता हूँ ।... ..

पंजाबी—

(एक और थप्पड़ जमा कर) तूं की कहनाएँ नाले चोर नाले चतुर !×

(भीड़ को चीरता हुआ भोलानाथ आता है ।)

भोलानाथ—

क्या बात है ? क्या बात है ?

मारवाड़ी—

बच गया छे शाब, थाके चोरी कर रह्यो छो ।‡

हिन्दुस्तानी—

समझिए बच गये । आपके मित्र ने इसे ठीक मौके पर चोरी करते हुए पकड़ लिया ।

आनन्द—

(जिसका साहस भोलानाथ के आने से बढ़ गया है) मैं कहता हूँ...

मारवाड़ी—

(लपक कर) तूं काई कहे छे ।❀

× तू क्या कहता है, चोर और फिर चतुर ।

‡ साहिब बच गए आप, यह आपके चोरी कर रहा था ।

❀ तू क्या कहता है ।

हिन्दुस्तानी—

(अदा से) यह कहता है...

पंजाबी—

ऐह केहँदा ऐ (चबा-चबा कर) नाले चोर, नाले चतुर! ऐह हेंड बैग किथे लै चलिया सू ..... *

(सब हँसते हैं।)

भोलानाथ—

(बढ़कर पंजाबी की गिरफ्त से आनन्द को छुड़ाता हुआ) छोड़िए छोड़िए, आप सब जाइए। ये मेरे मित्र हैं, मैं इनसे निबट लूँगा।

हिन्दुस्तानी—

लेकिन चोर......

भोलानाथ—

मैं कहता हूँ, इन्होंने कोई चोरी नही की, आप जाइए, मेरी पत्नी को आना है और आप सीढ़ियाँ रोके हैं।

(सब बुड़बुड़ाते हुए चले जाते हैं।)

पंजाबी—

(रुक कर) पर ओह बाबू !+

भोलानाथ—

(चीख कर) वह शैतान गया नहीं ?

(पंजाबी जल्दी-जल्दी चला जाता है।)

---

* यह हैंड बैग कहाँ ले चला था।

+ पर वह बाबू

आनन्द—

वह तो पुलिस मे रिपोर्ट लिखाने गया है।

भोलानाथ—

आख़िर हुआ क्या ?

आनन्द—

होना क्या था, सब उसकी बदमाशी है।

भोलानाथ—

आख़िर बात क्या हुई ?

आनन्द—

होती क्या ? तुम्हारे जाने के बाद मैं लेट गया तो कुछ ही देर बाद वह आया। पहले तुम्हें आवाजें दीं, फिर शायद ताला देख बड़बड़ाया। चारपाई घसीट कर बिलकुल उसे दरवाजे के आगे बिछा कर लेट गया। मैं।... ......

भोलानाथ—

तुम्हारे साथ ऐसा ही होना चाहिए था, कहा न था चलो हमारे साथ।

आनन्द—

साढ़े तीन बजे मुझे प्रिंसिपल साहिब से मिलना था। आख़िर प्रतीक्षा करके मैं तैयार हुआ पर जाऊँ किधर से ? मैं तिपाई पर चढ़ कर रौशनदान तक चढ़ा, फिर उतरने लगा था।

भोलानाथ—

और वह तुम्हारा भी गुरु निकला ! मैंने कहा था न कि अव्वल दर्जे का पाजी है ?

आनन्द—

उसने तो शोर मचा दिया, इतने आदमी इकट्ठे कर लिए और उस पंजाबी ने तो कई थप्पड़ मेरे मुँह पर जड़ दिये।

(बनवारी प्रवेश करता है।)

बनवारीलाल—

(जैसे कुछ जानता ही नहीं) ये विचित्र दोस्त हैं आपके। यह तो सब कुछ उठाकर ही ले चले थे।

भोलानाथ—

आपको शर्म नहीं आती, ये तो अन्दर ही थे।

बनवारीलाल—

लेकिन मुझे क्या मालूम था, मैंने आवाज़ें दीं, ये बोले तक नहीं।

भोलानाथ—

सो रहे होंगे।

बनवारीलाल—

तो जब जगे थे, तब मुझे आवाज देते, रौशनदान से उतरने की क्या आवश्यकता थी ....?

भोलानाथ—

अच्छा हटाइये इस मामले को। कमला की तबीयत खराब हो रही है। मैं इसी गाड़ी से उसे गुरदासपुर ले जाऊँगा। चलो आनन्द तुम मेरे साथ चलो। अब प्रिंसिपल साहिब से कल मिल लेना।

बनवारीलाल—

आप गुरदासपुर जा रहे हैं। आपकी ससुराल तो नवाँ शहर है?

भोलानाथ—

वहाँ कमला के बड़े भाई रहते हैं।

बनवारीलाल—

(चौंक कर) भाई!

भोलानाथ—

म्युनिसिपल कमेटी में हेड क्लर्क हैं।

बनवारीलाल—

म्युनिसिपल कमेटी मे (उल्लास से हल्की सी ताली बजाकर) यह आपने अच्छी खबर सुनायी। मैं स्वयं परेशान था। वहाँ म्युनिसिपल कमेटी में मुझे काम है। गुरदासपुर में मेरा कोई परिचित नहीं था। अब आप साथ होंगे तो सब कुछ सुगमता से हो जायगा। ठहरिए मैं यह बैग उठा लूँ।

(बढ़कर बैग उठाता है।)

पर्दा

वीणा अगस्त १९४०.